अंक - 15 मार्च, 2010

धारणा

आरोग्यम् सुखसम्पदा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान

(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)

मुनीरका, नई दिल्ली-110067

वेबसाइटः**www.nihfw.org**

ई-मेलः **director@nihfw.org**

प्रमुख संपादक
प्रोफेसर देवकी नन्दन

प्रबंध संपादक
डा.अंकुर यादव

उप-संपादक
गणेश शंकर श्रीवास्तव

संपादकीय मंडल
डा.वी.के.तिवारी, सदस्य
डा.यू.दत्ता, सदस्य
डा.संजय गुप्ता, सदस्य
अरविन्द कुमार - सदस्य सचिव

डिजाइन एवं उत्पादन
हेमन्त कुमार उप्पल
रवि तिवारी

- धारणा में व्यक्त विचार लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं तथा यह आवश्यक नहीं है कि यह विचार संस्थान की नीतियों के द्योतक हों।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067 द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

आमुख

राजभाषा नीति के क्रियान्वयन की दिशा में चल रहे प्रयासों के अंतर्गत और जन-स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विषय से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से तथा संस्थान के स्टाफ सदस्यों में तकनीकी विषयों पर हिन्दी-लेखन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, वर्ष 1995 से संस्थान द्वारा हिन्दी पत्रिका 'धारणा' का प्रकाशन प्रति वर्ष निर्बाध रूप से हो रहा है। इसी क्रम में `धारणा' के पन्द्रहवें अंक को पाठकों के समक्ष रखते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। संस्थान के स्टाफ सदस्यों के साथ-साथ देश के अन्य भागों से प्राप्त, तकनीकी विषयों पर लिखित लेखों को भी इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। मेरा विश्वास है कि 'धारणा' जन-स्वास्थ्य के प्रति अज्ञानता को दूर करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ ही राजभाषा हिन्दी में तकनीकी लेखों को प्रोत्साहन देने का भी सफल प्रयास करेगी।

इस अंक में हम स्वास्थ्य के प्रति विभिन्न पहलुओं/दृष्टिकोणों पर आधारित लेखों का प्रकाशन कर रहे हैं, आशा है कि जन सामान्य एवं स्वास्थ्य क्षेत्र से जुड़े शिक्षार्थियों एवं परिवार कल्याण एवं इससे जुड़े जिज्ञासुओं को इसमें उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकेगी। मुझे प्रसन्नता है कि 'धारणा' के पिछले अंक के लिए हमें सुखद तथा उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं जिससे 'धारणा' के आगामी अंकों के सफल प्रकाशन के प्रति हमारा विश्वास दृढ़ हुआ है। मैं सुधी पाठकगणों से इसी प्रकार के सतत सहयोग की आशा करता हूं। अतएव, मैं जन-स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के क्षेत्र में संलग्न शोधार्थियों, विद्वतजनों तथा पाठकों से यह आग्रह करूंगा कि वे हमें सम-सामयिक और जन-स्वास्थ्य से संबंधित उपयोगी साहित्य उपलब्ध कराएं, जिससे हमें 'धारणा' के आगामी अंक के प्रकाशन में सहायता प्राप्त होगी।

'धारणा' के पन्द्रहवें अंक के प्रकाशन पर मैं सभी लेखकों तथा प्रकाशन में अन्य सहयोगियों के सहयोग की सराहना करता हूँ।

प्रोफेसर देवकी नन्दन
निदेशक

संपादकीय

हमारे देश में विश्व के अन्य विकसित तथा उन्नत देशों की भाँति जन-स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य क्षेत्र पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। समयक्रम व्यतीत होने के साथ-साथ स्वास्थ्य क्षेत्र इसके संबद्ध संगठनों तथा कार्मिक वर्गों की ज्ञान परिधि अवसंरचनात्मक ढाँचागत व्यवस्था और अन्य सुविधाओं का विस्तार व विकास हुआ है, वहीं इस क्षेत्र के समक्ष नई-नई चुनौतियाँ भी आई हैं। जन-स्वास्थ्य, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों, प्रजनन शिशु स्वास्थ्य, मातृ-शिशु स्वास्थ्य आदि ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से हैं, जिन्हें उन्नत एवं विकसित करने की आवश्यकता प्रत्येक देश को रहती है।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2005 से प्रारंभ किए गए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत देश भर में ग्रामीण क्षेत्रों, दूरवर्ती गाँव-कस्बों में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम से संबद्ध सेवायें उपलब्ध कराई गई तथा व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य से जुड़ी सूचनाओं का प्रचार-प्रसार भी किया गया। हमें देश के महानगरों, शहरों में बसे लोगों के साथ-साथ देहातों, गाँव-कस्बों में बसे विशाल जन समुदाय के स्वास्थ्य को ठीक रखने पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। इस दिशा में बहुत कुछ प्रयत्न किए गए हैं, किन्तु इन कार्यों को स्वास्थ्य सूचना प्रणाली द्वारा सुदृढ़ बनाकर और अधिक गति प्रदान करने की आवश्यकता है। इस दिशा में किए गए प्रयास और सार्थक हो सकते हैं, जबकि जन-जन तक समुचित सूचनाऐं एवं जानकारी सरल तथा बोधगम्य हिन्दी भाषा में पहुँचे, जिससे निचले स्तर पर सामान्य जन-समुदाय जन-स्वास्थ्य एवं इससे संबद्ध पक्षों से भली-भाँति अवगत हो सके। प्रस्तुत पत्रिका में स्वास्थ्य संबंधी तकनीकी विषयों पर सामयिक लेख प्रकाशित किए गए हैं, ताकि सामान्य ज्ञान रखने वाले पाठकों तक भी स्वास्थ्य पक्षों से संबंधित सूचनायें पहुँच सकें।

धारणा के इस नवीन अंक में स्वास्थ्य के क्षेत्र में हमारे समाज के समक्ष एक चुनौती बन कर उभरी कुछ सामयिक समस्याओं तथा विषयों जैसे मानसिक स्वास्थ्य, पल्स पोलियो कार्यक्रम, बाल स्वास्थ्य में सहभागिता, स्वास्थ्य सेवा शुल्क, प्रजनन स्वास्थ्य, प्रदूषण तथा पंचायतीराज व्यवस्था में महिला आरक्षण आदि विभिन्न पक्षों को शामिल किया गया है, ताकि जन-मानस के ज्ञान स्तर में और अधिक वृद्धि हो सके तथा विषयगत संवाद प्रक्रिया सरल रूप से आगे बढ़ती रहे।

धारणा पत्रिका का यह पन्द्रहवां अंक जन-स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य क्षेत्र के कुशल एवं प्रबल उर्जावान निदेशक प्रोफेसर देवकी नंदन द्वारा सतत् रूप से प्रदत्त मार्गदर्शन और प्रेरणा से ही साकार रूप ले सका है। विद्वान लेखकों के योगदान एवं संपादन मंडल के सक्रिय रूप से परामर्श के लिए हम आभारी हैं। धारणा पत्रिका की प्रकाशन प्रक्रिया में हिन्दी कक्ष के सदस्यों सहित संपादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करने वाले सभी सदस्यों का भी मैं धन्यवाद व्यक्त करता हूँ, जिनके बहुमूल्य प्रयासों से यह प्रकाशन मूर्त रूप ले सका है।

आशा है, इस अंक में समाहित विषय-सामग्री तथा जानकारी व्यापक जन समुदाय के चिंतन और ज्ञान भंडार के लिए उपयोगी हो सकेगी। इस पत्रिका के सतत् विकास के लिए आपके सुझावों, योगदान तथा प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करते हैं।

(डॉ. अंकुर यादव)
प्रबंध संपादक

दिनांकः मार्च, 2010

विषय सूची

क्रम	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
	आमुख	प्रोफेसर देवकी नन्दन	i
	सम्पादकीय	डॉ. अंकुर यादव	iii
1.	केवल स्तनपानः शिशु स्वास्थ्य का आधार	प्रोफेसर देवकी नन्दन	1
2.	भारत में मानसिक स्वास्थ्यः एक विहंगम दृष्टि	प्रोफेसर वाय.एल.टेखरे	5
3.	राष्ट्रीय पल्स पोलियो कार्यक्रम और सामुदायिक सहभागिता	वन्दना मौर्या	9
4.	बाल शिशु स्वास्थ्यः पहल एवं रणनीतियाँ	अनिल कुमार मिश्रा वन्दना कुमारी	14
5.	बाल्यावस्था में स्वास्थ्य संबंधी पक्ष	अरविन्द कुमार	18
6.	किशोर स्वास्थ्य व बदलते सामाजिक परिदृश्य	गणेश शंकर श्रीवास्तव कृष्ण चन्द्र चौधरी	24
7.	हरियाणा में स्वास्थ्य शुल्कः एक सफल प्रयोग	डा. प्रदीप कुमार	29
8.	स्वाइन फ्लूः लक्षण और उपचार	डा.इन्दु ग्रेवाल,	34
9.	मधुमेह और हमारा स्वास्थ्य	मनीषा	39
10.	मातृ शिशु स्वास्थ्य और प्रजनन स्वास्थ्यः महत्वपूर्ण तथ्य	स्वाति धमीजा	46
11.	धूम्रपान व्यवहारः कारण और निवारण	डा. मनोज कुमार जैन	50
12.	बढ़ता प्रदूषण - पनपते खतरे	वैशाली जैसवाल	57
13.	मोटापे से बचावः कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु	मनोज कुमार झा	61
14.	पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण	जगदीश सिंह रावत	63
15.	दिल्ली में रक्तदान सेवायेंः तथ्य एवं भ्रांतियाँ	डा.कुमुद बाला	66
16.	कविताएंः		
	(i) आशा की मुस्कान	अरविन्द कुमार	69
	(ii) बेटी	रेखा मीणा	71
	(iii) एड्स भगाओ	डा. चंचल सिंह मर्छाल	72
	(iv) 'एड्स' ... समझें और समझायें	डा. अशोक मिश्रा	74
	(v) हृदय की अनकही पीड़ा	डा. श्रीधर द्विवेदी	75

केवल स्तनपानः शिशु स्वास्थ्य का आधार

प्रोफेसर देवकी नंदन*

एक नन्हा शिशु जीवन की अनन्त संभावनाएं लेकर इस संसार में आता है। जीवन की इस प्रारंभिक अवस्था में उसकी प्रत्येक नैसर्गिक एवं भौतिक स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना समाज का पुनीत कर्त्तव्य है। जन्म के उपरांत शिशुओं की प्राथमिक आवश्यकताओं के रूप में हमें उसके सम्पूर्ण आहार का स्नेहपूर्वक ध्यान रखना चाहिए तथा सदैव उसकी सुरक्षा के प्रति सचेत भी रहना चाहिए। शिशु के आहार संबंधी विशेष आवश्यकताओं के रूप में यदि हम अवलोकन करें, तो शिशु द्वारा माता के स्तनपान की प्रक्रिया को हम सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार मानते हैं। स्तनपान एक प्राकृतिक एवं सुरक्षित प्रक्रिया है, यह माँ का दूध ही है जो शिशु के जीवन को सही शुरूआत देता है, साथ ही साथ उसके भावी जीवन को स्वस्थ एवं खुशहाल बनाता है। जिस प्रकार माँ का स्थान संसार में कोई अन्य नहीं ले सकता उसी प्रकार शिशु स्वास्थ्य की दृष्टि से 'स्तनपान' का स्थान भी कोई अन्य प्रक्रिया नही ले सकती।

नवजात शिशु के जीवन और विकास में माता का दूध अत्यंत महत्वपूर्ण होता है जो उसे केवल अपनी माता द्वारा स्तनपान से प्राप्त होता है। स्तनपान के दूध से ही शिशु को पूर्ण पोषण प्राप्त होता है जिस पर शिशु की शारीरिक वृद्धि तथा व्यक्तित्व विकास का आधार स्तम्भ टिका रहता है। शिशु को समय-समय पर माता द्वारा स्तनपान न कराने अथवा 'केवल स्तनपान' कराने के बारे में पर्याप्त जानकारी न होने से शिशु के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा वह असमय ही कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। माता को स्तनपान कराने से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है।

माता को यह जानकारी दी जानी चाहिए कि उसके प्रारंभिक दूध में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो शिशु की वृद्धि के लिए नितांत आवश्यक हैं। **'केवल स्तनपान' के माध्यम से छः मास तक शिशु को केवल माँ का दूध ही दिया जाता है जिसके पीछे यह आशय निहित है कि माँ के दूध के अतिरिक्त अन्य कोई ठोस अथवा द्रव आहार शिशु को न दिया जाए, यहां तक कि पानी भी नही क्योंकि प्रसव के पश्चात माँ के स्तनों में एक विशिष्ट प्रकार का गाढ़ा, चिपचिपा व पीले रंग का 'कोलेस्ट्रम' दूध बनता है जो नवजात के लिए आसानी से सुपाच्य तो होता ही है, साथ ही साथ शिशु की विभिन्न प्रकार के संक्रमणों से रक्षा भी करता है।** इसमें वह सभी पोषक तत्व मौजूद होते हैं जिनकी आवश्यकता छः मास तक शिशु को होती है। इसमें वसा, लैक्टोज, प्रोटीन, विटामिन, आयरन, मिनरल, इम्यूनोगलोबिन्स तथा पानी भी होता है । शिशु की आंतों को साफ कर यह पीलिया होने की संभावना में भी कमी लाता है।

केवल स्तनपान के द्वारा शिशु की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि माँ अपने खान-पान का विशेष ध्यान रखे, साथ ही साथ परिवार के अन्य सदस्य भी माँ के सम्पूर्ण पोषण पर ध्यान दें। शरीर में शारीरिक सबलता लाने के लिए माँ को अनाज व उससे बनी अन्य खाद्य वस्तुएँ, शकरकन्दी, आलू, वसायुक्त खाद्य पदार्थ जैसे - घी, तेल, वनस्पति, मूँगफली इत्यादि का सेवन करना चाहिए। शरीर की वृद्धि मे सहायक खाद्य पदार्थ

* निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067

जैसे कि पशुओं से मिलने वाले पदार्थ - दूध, पनीर, अण्डा, मांस, मछली तथा पौधों से प्राप्त प्रोटीन - दाले, फली, सूखे मेवे इत्यादि के साथ ही हरी सब्जियों व फलों का सेवन भी माता को करना चाहिए। चूंकि, गर्भावस्था के दौरान शरीर की आवश्यकताएं बढ़ जातीं हैं, अतः अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार, जब एक स्वस्थ माता अपने शिशु को केवल स्तनपान कराती है तो शिशु का पूर्ण शारीरिक विकास होता है और भावी व्यक्तित्व का निर्माण भी। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि माताएं, बच्चों को गाय का दूध या पाउडर-दूध न दें। बाजार के डिब्बों के दूध शिशुओं के लिए सही नही है, क्योंकि इसमें उचित मात्रा में प्रोटीन, वसा, विटामिन व आयरन नहीं होते हैं तथा दूषित तत्वों के कारण संक्रामक रोगों का खतरा भी बढ़ जाता है। इस प्रकार के बाजारू दूध को शिशु पचा नहीं पाता परिणामस्वरूप दस्त की संभावना बढ़ जाती है। यह महंगा होने के बावजूद भी कम पोषक होता है और शिशु में एलर्जी की शिकायत भी पैदा कर सकता है। जब कोई माता अपने शिशु को स्तनपान नहीं कराती है तो माहवारी शुरू हो जाने के कारण माता में खून की कमी, शीघ्र गर्भधारण, स्तन एवं अण्डाशय के कैंसर जैसी समस्याओं की संभावना बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप से यह अब पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका है कि माँ का दूध ही नवजात के लिए सम्पूर्ण पोषक आहार है। केवल स्तनपान की इस प्रक्रिया में जच्चा एवं बच्चा, दोनो ही समान रूप से लाभान्वित होते हैं। शिशुओं के सर्वांगीण विकास एवं वृद्धि की दृष्टि से केवल स्तनपान से होने वाले लाभों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त कर सकते हैंः

1. शिशु की प्रोटीन, वसा, लैक्टोज, विटामिन, आयरन, मिनरल, पानी व एन्जाइम की आवश्यकता की पूर्ति।
2. लौह-तत्वों, विटामिन 'डी', 'ए' एवं 'सी' की अधिक मात्रा।
3. शिशु में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास।
4. शिशु के अनुसार उचित तापमान का दूध।
5. दूषित तत्वों एवं जीवाणुओं से मुक्त स्वच्छ दूध।
6. आगामी भविष्य में शिशुओं की बढ़ी उम्र में मधुमेह, दिल की बीमारियों, एग्जिमा, अस्थमा तथा एलर्जी इत्यादि रोगों की संभावना में कमी।
7. शिशुओं के बौद्धिक एवं मानसिक रूप से समुचित विकास में सहायक।

इसके अतिरिक्त केवल स्तनपान माँ एवं शिशु के मध्य एक भावनात्मक संबंध का विकास करता है। उनमें पारस्परिक प्रेम बढ़ता है तथा उनका रिश्ता मज़बूत होता है। इसी प्रकार शिशु के साथ ही साथ माता को भी केवल स्तनपान से विभिन्न प्रकार के निम्नलिखित लाभ होते हैंः

1. केवल स्तनपान रक्तस्राव को रोकता है।
2. एनीमिया के खतरे को कम करता है।
3. मोटापे तथा वजन की कमी में सहायक।
4. स्तन और अण्डाशय के कैंसर के खतरे में कमी।
5. हड्डियों की कमजोरी से बचाव।
6. दो बच्चों के बीच अन्तर रखने में सहायक।

यह भी उल्लेखनीय है कि केवल स्तनपान से जहाँ शिशु और माता सीधे तौर पर लाभान्वित होते हैं वहीं अंतिम रूप से समाज एवं राष्ट्र भी। शारीरिक बौद्धिक/मानसिक रूप से स्वस्थ बच्चे ही राष्ट्र को विकास के पथ पर ले जाने वाली 'युवा शक्ति' के रूप में सामने आते हैं और उम्र के उत्तरार्द्ध-प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में, वैचारिक धरातल मज़बूत कर, राष्ट्र की भविष्य दृष्टि निर्धारित करते हैं। अतः समाज द्वारा केवल स्तनपान को पूरे उत्तरदायित्व के साथ देखा जाना चाहिए।

केवल स्तनपान कराते समय कुछ बातों के प्रति सतर्कता बरतनी चाहिए। नवजात को जन्म के एक घण्टे के भीतर ही माता द्वारा स्तनपान करा देना चाहिए, क्योंकि इस वक्त शिशु को दूध पीने की तीव्र इच्छा होती है एवं चुस्त शिशु दूध पीने के पश्चात चार-पांच घण्टे के लिए सो जाता है, बच्चे के जागने पर उसे पुनः स्तनपान कराया जा सकता है। यदि प्रसव ऑपरेशन के माध्यम से हुआ है तब भी छह घण्टे के अन्दर स्तनपान अवश्य कराना चाहिए। केवल स्तनपान कराते समय यह सुनिश्चित करें कि बच्चा सुविधापूर्वक निप्पल को अपने मुँह में ले सके। केवल स्तनपान के समय शिशु का शरीर माता की ओर घूमा हुआ तथा माता के पेट से सटा हुआ होना चाहिए। ध्यान रखें कि इस समय शिशु का सिर और गर्दन सीधे रहें। स्तनपान शुरू करने से पहले माँ शिशु के गाल या होठों को उंगली या स्तन से छुए जिससे कि बच्चा अपना मुँह खोल देगा, तब शिशु के मुँह में स्तन दें। माँ को दोनो स्तनों से बारी-बारी दूध पिलाना चाहिए। शिशु का पूरा शरीर माँ की गोद में इस प्रकार हो कि माँ उसकी आंखों में देख सके। स्तनपान की प्रक्रिया की सम्पूर्ण अवधि में माता का ध्यान शिशु पर ही होना चाहिए, शिशु के लिए वात्सल्यपूर्ण प्रेम के साथ एकाग्रता पूर्वक कराया गया स्तनपान शारीरिक, भावनात्मक और बौद्धिक-मानसिक रूप से अति लाभकारी होता है।

ध्यान रखें कि शिशुओं को उनकी इच्छा के अनुसार दूध पिलाना चाहिए क्योंकि प्रत्येक शिशु के चूसने का ढ़ंग अलग-अलग होता है। कुछ शिशु 5-10 मिनट तक का ही समय लेते हैं तो कुछ उससे 5-7 मिनट अधिक भी ले सकते हैं किन्तु यदि शिशु आधे घण्टे से अधिक एवं 4-5 मिनट से कम समय ले, तो कोई समस्या हो सकती है। शिशु को रात में भी स्तनपान कराना चाहिए। रात्रि के समय दूध बनाने वाला हार्मोन 'प्रोलैक्टिन' अधिक बहता है, अतः माँ की छाती में अधिक दूध बनता है, जिससे शिशु पूर्ण रूप से संतुष्ट हो जाता है।

शिशु के सम्पूर्ण विकास के लिए माँ के दूध के समान कोई पोषककारी विकल्प नही है, अतः माँ को स्तनपान से संबंधित समस्याओं का समुचित समाधान करना चाहिए, ऐसा न होने पर बच्चों को प्रायः बाजार या पशुओं के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है। माता में स्तनपान से संबंधित ये समस्याएं, निप्पल संबंधी, छाती संबंधी, स्तनों में सूज़न, दूध की नली में रूकावट इत्यादि के रूप में सामने आ सकती हैं। सपाट निप्पल, अंदर धंसे निप्पल, लम्बे निप्पल व फटी हुई निप्पल स्तनपान की सुचारु प्रक्रिया को बाधित करते हैं किन्तु समुचित विधियाँ अपनाकर इन बाधाओं को कम किया जा सकता है। केवल स्तनपान कराने में यदि माता को कोई समस्या हो रही हो (जैसे कि निप्पल संबंधी, स्तनों में सूजन संबंधी, दूध की नली में रूकावट) तो डॉक्टर से मिलकर इनका समुचित इलाज कराना आवश्यक है ताकि बच्चे को केवल स्तनपान का पूरा लाभ मिल सके।

संदर्भः

1. पीयर काउन्सलर/बाल परिवार मित्र प्रशिक्षण माड्यूल, एस.एन.मेडिकल कॉलेज, आगरा।
2. बदलाव के लिए उत्प्रेरणा (ब्लाक एवं सेक्टर स्तर के लिए प्रशिक्षण माड्यूल-2), स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण निदेशालय, उत्तर प्रदेश सरकार।
3. स्तनपान और पूरक आहार, द्वितीय संस्करण 2005, बी.पी.एन.आई., दिल्ली।
4. प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम, परिवार कल्याण महानिदेशालय, उत्तर प्रदेश सरकार।

भारत में मानसिक स्वास्थ्यः एक विहंगम दृष्टि

डॉ. वाय.एल.टेखरे*

मानसिक स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के पूर्ण स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्राचीन काल से ही इस बात का अनुभव किया जाता रहा है कि चिकित्सकीय आयाम के अतिरिक्त दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक और सदाचार के आधार भी नितांत आवश्यक हैं। सन् 1948 की सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा में मूल मानव अधिकार के रूप में सभी व्यक्तियों को जीवन जीने के समान अधिकार प्राप्त हैं, जिसमें किसी भी प्रकार की अशक्तता को भी शामिल किया गया है। आज हम नाना प्रकार के मानसिक विकारों से ग्रसित हो रहे हैं, इसके अनेक कारण हो सकते हैं - घर का वातावरण, अन्यान्य प्रकार की हिंसा, भेदभाव, अत्यंत महत्वाकांक्षी होना, घोर निराशा, मानसिक आघात, व्यापार और सामाजिक सफलता में विफल होना, इत्यादि। मानसिक अस्वस्थता लोक स्वास्थ्य की मुख्य समस्या है, मानसिक स्वास्थ्य नही है तो कोई स्वास्थ्य नही है। मानसिक रूग्णता आर्थिक उत्पादन,स्वस्थ समाजिक संबंध और समग्र जीवन को बुरी तरह प्रभावित करती है। जेनेटिक वंश परम्परा और भौतिक सामाजिक वातावरण मानसिक बीमारी को गंभीर बनाते हैं। गंभीर मानसिक विकारों में मुख्य रूप से सिजोफ्रेनिया, बाईपोलर विकार, आर्गेनिक साइकोशिस और गहन अवसाद से हमारे देश में एक हजार की जनसंख्या में लगभग 20 व्यक्ति पीड़ित होते हैं। समग्र जनसंख्या में यह आंकडा 5 करोड़ के आसपास है, इनमें से 5 प्रतिशत को तो तत्काल मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है। परन्तु यह भी सच है कि 80% जिलों में एक भी मनोचिकित्सक नहीं है। इस विशाल जनसंख्या के लिए निरन्तर इलाज और नियमित अनुवर्ती ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे देश में लगभग एक करोड़ लोग मानसिक रोगी हैं, जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक है, इसी प्रकार बच्चों की मानसिक दशा भी एक गंभीर समस्या है। घरेलू हिंसा और परिजनों का तिरस्कार महिलाओं और बच्चों में मानसिक रोगों को जन्म देने में काफी हद तक जिम्मेदार हैं। जिन महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार की घरेलू हिंसा होती है उनमें आत्महत्या करने की संभावना लगभग 5 गुणा बढ़ जाती है।

वस्तुतः हमारे समाज के परम्परागत स्वरूप में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने की प्रवृत्ति बहुत शिथिल है। जीवन शैली से जुड़े अनेक पक्ष जैसे शरीर और मन का तादाम्य बहुत आवश्यक है, जिसमें भोजन की पर्याप्त और उचित खुराक, आवश्यकतानुसार नींद और व्यायाम की अवहेलना बहुधा होती है, इसे हमारे शरीर और मन को भी झेलना पड़ता है। इन परिस्थितियों में पड़ोस, परिवार, मित्रगण, संगी-साथी,नाते रिश्तेदार,शिक्षक और शुभचिंतकों का सहयोग व वैचारिक आदान-प्रदान निश्चित रूप से हमें अच्छे शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य की ओर अग्रसर करेगा। सभी समुदायों,संस्थाओं और इकाइयों द्वारा विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस का आयोजन प्रतिवर्ष 10 अक्टूबर को किया जाता है, वर्ष (2009) में 'प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या में मानसिक स्वास्थ्य' पर विशेष बल दिया गया। इन सभी मनोविकार रोगियों को उचित इलाज नहीं मिलता। वस्तुतः आधे से अधिक का कभी इलाज ही नहीं होता। इस दिशा में इलाज की उपलब्धता और इलाज के फायदे की समुचित जानकारी न होना महत्वपूर्ण कारण है। यह भी एक सत्य है कि

* आचार्य, समाज विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।
सम्प्रतिः निदेशक (अनुसंधान) (प्रतिनियुक्ति आधार पर), राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

एक तरफ देश की विशाल जनसंख्या और दूसरी तरफ मनोचिकित्सकों की कम संख्या है, अनुमान है कि हर तीन लाख जनसंख्या पर एक मनोचिकित्सक उपलब्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां लगभग 70% आबादी रहती है, मनोचिकित्सक/जनसंख्या का अनुपात दस लाख पर एक चिकित्सक से भी कम हो सकता है, जबकि तीन-चौथाई मानसिक रोगी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

सन् 1982 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिसके मुख्यतः तीन उद्देश्य हैं:

1. निकट भविष्य में न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य देखभाल सभी विशेषकर समाज के सबसे असुरक्षित वर्गों को उपलब्ध कराना जहां वह सेवायें प्राप्त कर सके।
2. मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान और सामान्य स्वास्थ्य देखभाल में कुशलता और सामाजिक विकास में बढ़ावा देना।
3. मानसिक स्वास्थ्य सेवा विकास में सामुदायिक भागीदारी और समुदाय में स्व-मदद को बढ़ावा देना।

नया अधिनियम 'मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987' लागू होने से मानसिक रोगियों के लिए आशा की किरण जगी है। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य मानसिक चिकित्सालयों और नर्सिंग होम की स्थापना और उनके कामकाज पर आवश्यक नियंत्रण रखना है। पिछले दो दशकों से मानसिक चिकित्सालयों की दशा में आंशिक सुधार आया है इसका श्रेय न्यायपालिका और जनहित याचिकाओं से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय तथा अनेक उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुपालन को जाता है। तथापि मानसिक स्वास्थ्य के प्रति समग्र समाज अभी भी अपेक्षाकृत अधिक जागरुक और संवेदनशील नहीं है। बहुधा मानसिक रोगी दोहरी मानसिकता का शिकार होता है - एक बीमारी और दूसरे सामाजिक कलंक। ऐसी स्थिति में परिजन और नाते-रिश्तेदार मदद करने में कतराते हैं। आज अनेक औषधि और वैज्ञानिक उपचार की उपलब्धता ने मानसिक रोगियों को स्वस्थ होने की आशा जगा दी है, किन्तु मानसिक रोगियों की देखभाल और समाज के दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होता। अध्ययनों से पता चला है कि बहुत से अस्पतालों में जो रोगी पूरी तरह स्वस्थ्य हो जाते हैं, उन्हें संबंधित रोगियों के परिजन लेने नहीं आते, कई बार तो ऐसे रोगियों को अस्पताल में भर्ती के समय ही गलत पता लिखा दिया जाता है। विचाराधीन कैदी कई सालों से अस्पतालों के मूल निवासी बन गये हैं, उनकी खोज-खबर लेने वाला कोई नहीं है। इन परिस्थितियों में हमारे देश में पुनर्वास केन्द्रों का अभाव है। वास्तव में प्रत्येक मानसिक अस्पताल के साथ एक पुनर्वास केन्द्र होना चाहिए, क्योंकि इससे उनका जीवन सफल हो सकता है। ये मानसिक रोगी जब ठीक हो जाते है तो देखा गया है कि वे रोजगार के लिए लालायित रहते हैं और समाज के विकास में अपना योगदान देना चाहते हैं। इस दिशा में जनता, सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं के समन्वित प्रयास पुनर्वास को साकार रूप दे सकते हैं।

हमारे देश में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित विविध कानूनों का योगदान आवश्यक प्रतीत होता है जिनमें नारकोटिक ड्रग्स एवं साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985; रिहेबिलिटेसन काउन्सिल ऑफ इंडिया एक्ट, 1992; पर्सन विद डिसेबिलिटीस इक्वल ओपोरचुनीटीश, प्रोटेक्सन ऑफ राइट्स एण्ड फुल पार्टिसिपेशन एक्ट, 1995 और प्रोटेक्सन ऑफ वीमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 2005 प्रमुख है। इन सभी कानूनों ने गौरवपूर्ण जीवन की दिशा में मार्ग प्रशस्त

किया है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में जिला स्तर पर आधारित मॉडल मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विकसित किया गया। इसे 1986-95 के मध्य 'निमहन्स' द्वारा कर्नाटक के बेल्लारी जिले में परखा गया और इसे अन्य जिलों में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 123 जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम चल रहे हैं, देशभर के मेडिकल कालेजों में 83 मनोचिकित्सक वार्ड अस्तित्व में हैं और कुल 43 मनोचिकित्सालय क्रियाशील हैं। 29 मानसिक स्वास्थ्य अस्पतालों को विशेष राशि उपलब्ध कराई गई है, प्रस्ताव है कि 11 केन्द्रों को 'सैंटर फॉर एक्सीलैंस' बनायेंगें जिसमें टर्सियरी स्तर पर सेवायें प्रदान की जायेंगी, प्रत्येक केन्द्र को 30 करोड़ रूपए प्रदान करने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष 40 मेडिकल कालेजों को पर्याप्त राशि उपलब्ध कराने की योजना है जो विशेषकर मनोचिकित्सा और समाजकार्य में एम.फिल. के कार्यक्रमों को बढ़ावा देंगे, इसके अतिरिक्त मनोचिकित्सा में डिप्लोमा और नर्सिंग मनोचिकित्सा को भी शुरू करने की योजना है। सन् 2008-09 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु 70 करोड़ रूपये उपलब्ध कराए गए हैं। प्रत्येक मेडिकल कालेज में एक मनोचिकित्सा विभाग जिसमें न्यूनतम तीन संकाय सदस्य, मापदण्डों के अनुसार 30 बिस्तर अंतरंग रोगियों हेतु, बहिरंग रोगियों की चिकित्सा का प्रावधान तथा थेरेपी की सुविधा सुनिश्चित करने की पेशकश की गई है। इन सबके बावजूद वर्तमान में एक-तिहाई मेडिकल कालेजों में पर्याप्त मनोचिकित्सा सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं।

योजना आयोजकों का मानना है कि मानसिक स्वास्थ्य को जन-जन तक पहुंचाने की दृष्टि से जन-संचार माध्यमों का भी भरपूर सहयोग लिया जा रहा है विशेषकर प्रिन्ट और इलैक्ट्रोनिक मीडिया का। इस पूरी प्रक्रिया में मानसिक अस्पतालों का आधुनिकीकरण, सरकारी मेडिकल कालेजों/सामान्य अस्पतालों के मनोचिकित्सा विभाग का उन्नयन, सेवा में सुधार के लिए मानसिक स्वास्थ्य प्रशिक्षण आदि शामिल हैं। इस ग्यारहवीं योजना (2007-12) में एक हजार करोड़ रूपये का आबंटन किया गया है और इसका विकेन्द्रीकरण राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के साथ मिला है ताकि अधिकतम परिणाम प्राप्त हो सकें। संक्षेप में, राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के प्रस्तावित संघटक इस प्रकार हैं:

1. अनुसंधान, जिसमें सेवायें, गुणवत्ता और मानसिक रोगों के कारणों का पता लगाना शामिल है, समय की माँग है, जिससे हम कारगर रणनीति बना पाएगें। जिले और संभागी स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत कमी है, इसे दूर करने के लिए कदम उठाना जैसे सूचना, शिक्षा और संचार की नितांत आवश्यकता है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में मानसिक बीमारी से बहुत से लांछन जुड़ जाते हैं। इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि मानसिक बीमारियों का इलाज हो सकता है, अतएव गहन अभियान की आवश्यकता है।
2. कार्यक्रम के क्रियान्वयन में स्वयंसेवी संस्थाओं और सार्वजनिक निजी भागीदारी को सुनिश्चित करना होगा इससे जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंतर्गत सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य पहलों की पहुंच बढ़ेगी। निगरानी, क्रियान्वयन और मूल्यांकन हेतु केन्द्र/राज्य/जिला स्तर पर प्रभावी निगरानी से राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम में बढ़ोत्तरी होगी।
3. मानव संसाधन (जनशक्ति) की गंभीर कमी दूर करने के लिए वर्तमान मानसिक अस्पतालों का उन्नयन और सुदृढ़ीकरण करके मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना, जिसमें मानसिक स्वास्थ्य में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम शुरू करने या क्षमता बढ़ाने के लिए भी सहायता प्रदान की जा सके।

4. जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम में जीवन कौशल प्रशिक्षण और स्कूल, कालेजों में परामर्श सेवायें, कार्यस्थलों के दबाव प्रबंधन और आत्महत्या निवारक सेवाओं के अतिरिक्त संघटक जोड़ना जिससे समग्र और समेकित प्रयास हो सकें।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा सन् 1999 में मानसिक अस्पतालों के इम्पीरिकल अध्ययन पर आधारित एक रिपोर्ट के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की हालत बेहद खराब है, जहां रोगियों को न केवल चिकित्सा की कमी है अपितु वहाँ उपलब्ध भौतिक संसाधनों जैसे पलंग, पानी, बिजली, रहने के स्थान आदि की अपर्याप्तता थी। निष्कर्ष बताते हैं कि इन केन्द्रों को 'अस्पताल' कहना भी तर्कसंगत नहीं होगा, वे 'केवल डंपिंग' ग्राउंड की भांति हैं, जहाँ मानसिक रोगियों को न तो रहने की ठीक दशायें मिल रही हैं और न ही मानव होने के नाते प्रतिष्ठापूर्ण आवास एवं भोजन ही उपलब्ध हैं, वे वहां पर बंदियों की भाँति रह रहे हैं।

मानसिक स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण पहलू कैदियों के साथ जुड़ा हुआ है, दुनियाभर में औसतन 32% सभी तरह के कैदियों को मनोवैज्ञानिक सहायता की नितान्त आवश्यकता है। यदि हम उनके प्रताड़ना की बात करें तो यह आंकड़ा 60% के पार हो जाएगा, तत्पश्चात् मानसिक स्वास्थ्य पर बल देना और भी मायने रखता है, इन कैदियों में मानसिक बीमारियों से ग्रसित लोगों की पहचान करना और उन्हें यथोचित सेवायें प्रदान करना बहुत जरूरी है। इससे जुड़े आंकड़ों का समुचित ब्यौरा अभी उपलब्ध नहीं है, न तो इनके इलाज, पुनर्परीक्षण, डिस्चार्ज और रिफरल आदि का लेखा-जोखा ही मिलता है, इस दिशा में कारगर कदम उठाने की जरूरत है। जेल अस्पताल में एक मनोचिकित्सक का होना जरूरी है, यदि ऐसा एकदम मुमकिन नहीं है तो सप्ताह में एक दिन का प्रावधान कदाचित अवश्य हो जिससे कैदियों की मानसिक विकृतियों और बीमारियों का त्वरित इलाज हो सके। वस्तुतः इन मानसिक रोगी कैदियों की चिकित्सा जेल में नहीं बल्कि अलग अस्पताल में होनी चाहिए क्योंकि इलाज के दौरान मौजूदा सामाजिक वातावरण का स्वस्थ होना नितांत आवश्यक है।

संदर्भः

1. मेंटल हैल्थ केयर एण्ड ह्यूमन राइट्सः नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशनः एडीटर्स डी. नागराजा एण्ड प्रतिमा मूर्ति, प्रथम संस्करण : 2008
2. भारत,2009 वार्षिक संदर्भ ग्रंथ, गवेषणा, संदर्भ और प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा संकलितः प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
3. मानवाधिकारः नई दिशायें; वार्षिक पत्रिका, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, फरीदकोट हाउस, कॉपरनिक्स मार्ग,नई दिल्ली,2006।

राष्ट्रीय पल्स पोलियो कार्यक्रम और सामुदायिक सहभागिता

वन्दना मौर्या*

पृष्ठभूमि

रोग और रोगी उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि मानव सृष्टि। मानव आरम्भ से ही विभिन्न प्रकार के रोगों का शिकार होता चला आ रहा है और साथ ही क्रम चलता आ रहा है, इन रोगों पर विजय पाने का। आज चिकित्सा विज्ञान ने अनेक रोगों पर विजय पाने हेतु सफल इलाज ढूंढ़ निकाले हैं परंतु यह रोग और रोगी का क्रम नित नये-रूप लेकर सामने आ जाता है। इसी क्रम का भयंकर रोग है - पोलियो।

पोलियो एक ऐसा रोग है जो जानलेवा तो नहीं है मगर लोगों को अपाहिज बनाकर जीवन-भर के लिए असामान्य बना देता है। पोलियो अधिकतर बच्चों को ही होता है। जिसके कारण हाथ अथवा अन्य अंगों जैसे टांगों इत्यादि का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

पोलियो माइलाइटिस एक तीव्र वायरल संक्रमण है जो आर. एन. ए. वायरस से होता है। ये शुरुआती तौर से मनुष्य के एलिमेंटरी ट्रेक्ट में पाया जाता है पर यह वायरस केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली (सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम) को एक प्रतिशत से प्रभावित करता है।

सन् 1840 में 'हइन' तथा सन् 1980 में 'मेडिन' ने इसकी पहचान की तथा इसे अस्पताल में पहुँचाया। जबकि पोलियो के कारण की खोज लैंड स्टेइनर और पोप्पर ने 1909 में कराई। एण्डर्स, वेला और रोबिन्स ने सन 1949 में इस वायरस का सफलतापूर्वक पता लगाया जिसकी वजह से इन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सन् 1955 में साल्क ने प्रभावशाली विकसित पोलियों वायरस के बारे में लोगों को बताया। सन् 1953 से 1957 के बीच 'सेबिन' ने जीवित वायरस को वैक्सीन के रूप में प्रयोग किया। भारत में 1961 में सर्वप्रथम ओरल पोलियो वैक्सीन का प्रयोग आन्ध्रप्रदेश में किया गया। सन् 1974 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक विस्तृत प्रोग्राम इम्यूनाइजेशन के लिए स्थापित किया। सन् 1978 में भारत सरकार ने इम्यूनाइजेशन का विस्तृत प्रोग्राम शुरू किया जो कि ई.पी.आई. के नाम से जाना जाता है।

सन् 1982 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ई.पी.आई. की ऊँची प्राथमिकता के लिए एक नियम प्रस्तावित किया जिसका लक्ष्य सन् 1990 तक विश्व के सारे बच्चों का टीकाकरण करना था। पोलियो वैक्सीन का सन् 1954 में जबरदस्त प्रयोग किया गया। जिसके कारण इस रोग से काफी हद तक मुक्ति मिली। सन् 1988 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पोलियो से देशों को मुक्त करने का प्रण लिया। आज तक सिर्फ अमेरिका ही ऐसा अकेला देश है जो पोलियों से मुक्त है। दक्षिण पेसीफिक भाग में सिर्फ एक ही पोलियो पीड़ित रोगी पाया गया और सन् 1999 में पोलियो वायरस टाइप-2 पाया गया। इसके बाद तीन साल तक शून्य प्रतिशत पाया गया।

* शोध छात्रा, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, परमानन्दपुर, वाराणसी, उ.प्र.।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के दक्षिण पूर्वी-एशियाई क्षेत्र (SEAR) में भाग लेने वाले देशों ने पोलियो से मुक्ति का कार्य-1994 में प्रारम्भ किया और काफी हद तक सफलता पाई।

सबसे ज्यादा पोलियो की समस्या भारत में रिपोर्ट की गई। पोलियो के विषाणु संबंधित आंत्र विषाणु है टाईप-1, टाईप-2, टाईप-3। इन सभी तीनों प्रकारों के कारण पक्षाघात होता है। पोलियो विषाणु अत्यंत या अत्यधिक संचरणीय है। संक्रमण और पक्षाघात शुरू होने में लगभग 4-35 दिन का समय लगता है। इसका संचरण व्यक्ति से व्यक्ति को मल-मुख के माध्यम से होता है, अर्थात पोलियो के विषाणु के फैलने की सर्वाधिक संभावना दो सप्ताहों के दौरान संक्रमित बच्चे के द्वारा होती है।

भारत में पोलियो

सन् 1999 में जो 1126 चाइल्ड पोलियो केसेस रिपोर्ट किए गये उसमें से 730 पोलियो वायरस के टाईप-3 थे। जबकि 397 टाईप-1 और 11 टाईप-2 पाए गये। भारत में दिल्ली, बिहार, उ.प्र., पश्चिमी बंगाल में सबसे ज्यादा समस्या पाई गई। इसी वजह से पोलियो उन्मूलन कार्यक्रम भारत में बहुत तेजी से लाया गया और भारत अभी तक पोलियो को जड़ से मिटाने के लिए क्रियाशील है।

पल्स पोलियो टीकाकरण कार्यक्रम

विश्व स्वास्थ्य संगठन के आलोक में सन् 1995 में पल्स पोलियो इम्यूनाइजेशन (पीपीआई) कार्यक्रम भारत में पोलियो की समाप्ति के लिए शुरू किया गया था। इस पाइलट प्रोजक्ट में सन् 1995 में देशभर में पल्स पोलियो टीकाकरण अभियान चलाया गया इसके अंतर्गत तीन वर्ष तक के बच्चों को शामिल किया गया। सन् 1996-97 के दौरान टीकाकरण की आयु पांच वर्ष तक के बच्चों के लिए बढ़ा दी गई। 1998-99 तक प्रत्येक वर्ष दिसम्बर व जनवरी के महीनों में दो दौरों में यह अभियान चलाया गया। इसके लिए घर-घर बच्चों का पता लगाकर व उनके लिए बूथ बनाकर टीकाकरण अभियान शुरू किया गया। इसके कारण 2-3 करोड अतिरिक्त बच्चों को टीकाकरण अभियान के तहत लाया जा सका।

भारतीय विशेषज्ञ सलाहकार समूह (आईईजी) जिसमें विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनाइटेड नेशन चिल्ड्रेन फंड (यूनीसेफ), सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल (अटलांटा) के विशेषज्ञों की अनुशंसाओं पर पोलियो उन्मूलन की राष्ट्रीय मुहिम तय की जाती है। भारतीय विशेषज्ञ सलाहकार समूह साल में दो बार पोलियो महामारी की स्थिति की समीक्षा करता है और देश में इसकी रोकथाम के लिए कार्यनीति की अनुशंसा करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की राष्ट्रीय पोलियो सर्वेक्षण परियोजना (नेशनल पोलियो-सर्वीलैंस प्रोजक्ट) उच्च स्तर के एक्यूट फेले सिड पेरे लाइसिस (ए एफ पी) सर्वेक्षण के लिए तकनीकी प्रदान करता है।

भारत में पोलियो उन्मूलन की पहल सन् 1995 में जब शुरू की गई, तब से लेकर अब तक पोलियो के मामलों में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की गई है, और सन् 2005 तक पोलियो के 66 मामले ही रह गये थे। देश के 35 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में से 33 राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश पोलियो वायरस के घरेलू संचरण से पिछले तीन साल में मुक्त हो जायेंगें। हालांकि बिहार

व यू.पी. में इसे शून्य स्तर तक लाने में उच्च जनसंख्या घनत्व व सफाई की खराब व्यवस्था होने के कारण इस मुकाम को हासिल करने में विलम्ब हो रहा है।

उत्तर प्रदेश व बिहार में संक्रमण के लक्ष्य को जल्द से जल्द शून्य स्तर पर लाने के लक्ष्य को हासिल करने के लिए मुहिम को संशोधित किया गया है। इसके तहत पोलियो टीकाकरण अभियानों की संख्या को मोनोवैक्सीन टाईप एक लगातार भारतीय विशेषज्ञ सलाहकार ग्रुप की अनुशंसाओं पर संशोधित किया गया है जो पोलियो वायरस टाईप एक व तीन को क्रमशः लक्षित करके तैयार किया गया है।

इस लक्ष्य को जल्द से जल्द हासिल करने के लिए क्रियान्वयन की रणनीति को और अधिक से अधिक मजबूत किया गया है जो इस प्रकार हैः

1. तय किए गए बूथों पर लगवाने, घर-घर जाकर रेलवे स्टेशनों से निकलने वाले रास्तों, महत्वपूर्ण रोड़ क्रासिंग, लंबी दूरी की ट्रेनों में, प्रमुख बस अड्डों आदि पर बच्चों को टीके लगवाने की प्रक्रिया को और तेज कर दिया गया है। टीकाकरण के प्रत्येक दौरे के जरिये 50 लाख बच्चों को पोलियों की खुराक पिलाई जा चुकी है।
2. प्रवासी लोग (बच्चों) जो कि यू.पी., बिहार, हरियाणा, पंजाब, गुजरात व पश्चिम बंगाल से आते हैं, उन्हें बिहार व यू.पी.के स्नीड्स के दौरान टीके लगाए जा रहे हैं।
3. बच्चों को टीके लगवाने के लिए आया को भी लगाया गया है जो बतौर टीम के सदस्य कार्य करेंगे।
4. स्नीड के दौरान गुम हुए बच्चों को आज्ञा डब्ल्यू डब्ल्यू द्वारा एकत्रित किया जा रहा है और उन्हें मासिक स्वास्थ्य दिवस पर टीके लगाए जा रहे हैं।
5. समुदाय के अगुआ (नेता) व लोकमत के निर्माता जो वांछित माने जाते हैं उन्हें भी इस मुहिम में शामिल करने की कार्यवाही करके पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों में अपनाया जा रहा है।

विश्व में पोलियो उन्मूलन की स्थिति

वर्ष 2000 के अंत तक पोलियो के उन्मूलन के लिए की गई वैश्विक पहल रोग नियंत्रण के लिए अब तक किया गया सबसे महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय-प्रयास है। 1988 से शुरू की गई इस पहल में उल्लेखनीय प्रगति की जा चुकी है। 3,50,000 से अधिक वैश्विक पोलियो के मामलों की अनुमानित संख्या 1999 में कम होकर केवल 7000 के आस-पास रह गई है। यूरोप (रूस सहित), पश्चिमी गोलार्द्ध, पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र (चीन सहित) और मध्य पूर्व का अधिकतर भाग और दक्षिणी एवं उत्तरी अफ्रीका के बहुत बड़े भाग से पोलियो विषाणु संचरण पर काबू पा लिया गया है। परिणामस्वरूप पोलियो विषाणु संचरण अब दक्षिण एशिया और केन्द्रीय पश्चिमी अफ्रीका में स्थित 10 देशों के कुछ स्थानों तक ही सीमित हो गया है।

भारत में स्थिति

भारत में पोलियों के लिए टीका 1978 में रोगप्रतिरोधक के विस्तारित कार्यक्रम के अंतर्गत शुरू किया गया था और 1984 तक लगभग 40 प्रतिशत शिशुओं को ओरल पोलियो

वैक्सीन की तीन खुराकें पिलाई जा सकी। 1989-90 तक देश के सभी जिलों को कवर करने के लिए 1985 में व्यापक रोग प्रतिरक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया था और उसे चरणबद्ध ढंग से कार्यान्वित किया गया। 1986 में व्यापक रोग प्रतिरक्षण कार्यक्रम को रोगप्रतिरक्षण प्रौद्योगिकी मिशन के बैनर के अंतर्गत प्रौद्योगिकी मिशन का स्तर प्रदान किया गया। इससे 1990-91 के दौरान इसकी कवरेज में महत्वपूर्ण वृद्धि अर्थात 95 प्रतिशत से अधिक कवरेज हुई और अब से इसकी 90 प्रतिशत से अधिक कवरेज बनायी जा रही है। 1987 में पोलियो के सूचित किए गए मामलों की संख्या 28,757 से कम होकर 1995 में 3265 रह गई।

यद्यपि सूचित किए गए पोलियो के मामलों की संख्या में अत्याधिक कमी हुई है तथापि यह अनुमान लगाया गया कि वस्तुतः केवल 10 प्रतिशत मामलों को ही सूचना देने की बात को सुनिश्चित करने के लिए डेनिडा की वित्तीय सहायता और विश्व स्वास्थ्य संगठन के तकनीकी सहयोग से अक्टूबर 1997 में राष्ट्रीय पोलियो निगरानी परियोजना (NPSP) शुरू की गई। इससे पोलियो के पुष्ट मामलों का पता लगाने में वृद्धि हुई। अर्थात वर्ष 1997 में 2276, 1998 में 4315 और 1999 में 2817 पोलियो के पुष्ट मामलों का पता लगा। राष्ट्रीय पोलियो निगरानी परियोजना अपने अस्तित्व से 1-1½ वर्ष के भीतर ही विश्व स्वास्थ्य संगठन के बैंचमार्कों को प्राप्त कर सकी। यह परियोजना अब देश में सूचित किए जाने वाले पोलियो के लगभग प्रत्येक मामले का पता लगाने और उन पर अनुवर्ती कार्यवाही करने के योग्य हो गई है। रिकार्ड समय के भीतर भारत के पोलियो निगरानी उपायों की सफलता ने विश्व स्वास्थ्य संगठन और सभी बहु-पक्षीय तथा द्वि-पक्षीय भागीदारों की प्रशंसा प्राप्त की है।

राष्ट्रीय पल्स पोलियो कार्यक्रम की सफलता में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका

सामुदायिक सहभागिता एक मानसिक प्रक्रिया के साथ-साथ एक शारीरिक प्रक्रिया भी है। सहभागिता भी स्वतः प्रेरित प्रक्रिया है तथा यह एक व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं होती। भारत एक विशाल आबादी वाला देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जहाँ स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ-साथ शिक्षा, आवास, जल आदि मूलभूत सुविधाएँ अत्यंत निम्न स्तर पर मौजूद हैं। यही कारण है कि भारत का जीवन स्तर निम्न बना हुआ है। आज भी शिशु मृत्यु दर अनेकानेक कारणों से बहुत ऊंची है। राष्ट्रीय पल्स पोलियो कार्यक्रम शिशु स्वास्थ्य के क्षेत्र में उठाया गया एक अत्यंत प्रशंसनीय कार्यक्रम है। 1995-96 में जब इसे पूरे देश में लागू किया गया तब 2002 तक पोलियो को जड़ से मिटाने का लक्ष्य रखा गया था परंतु अभी तक इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका जिसके पीछे एक महत्वपूर्ण कारण सहभागिता का अभाव उभर कर आ रहा है। सामुदायिक सहभागिता के अंतर्गत जनसाधारण द्वारा विभिन्न स्तरों पर सक्रिय एवं अर्थपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। देश के राजनैतिक ताने-बाने के अनुरूप सरकार द्वारा इसे चलाये जाने वाले सभी कार्यक्रमों की सफलता सामुदायिक सहभागिता पर निर्भर करती है। किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिए वहां के लोग मूल्यवान स्रोत की भूमिका में होते हैं। अतः समस्याओं के समाधान के प्रति समुदाय की रूचि तथा कार्यक्रम में उनकी सहभागिता, जागृति तथा आत्मनिर्भरता को अभिव्यक्त करता है। इसलिए राष्ट्रीय पल्स पोलियो अभियान में माता-पिता, भाई-बंधु, पास-पड़ोसी, शुभचिन्तकों आदि की सक्रिय सहभागिता में 'स्वस्थ शिशु-स्वस्थ भारत' के लक्ष्य को अतिशीघ्र प्राप्त किया जा सकता है।

आलोचनात्मक समीक्षा

आत्मनिर्भरता के लिए सामुदायिक सहभागिता एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इससे समुदाय के सदस्यों को अपनी पहचान बनाने में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से पल्स पोलियो कार्यक्रम की सफलता हेतु सामुदायिक सहभागिता एक मूलभूत आवश्यकता है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है भारत जैसे विकासशील देश में जहां अशिक्षा, अज्ञानता, गरीबी, आवासीय समस्याएँ, बिजली और पानी जैसी मूलभूत सुविधाओं की कमी है वहीं इतने बड़े जनसमूह में बिना जागृति और जनसहभागिता के किसी भी कार्यक्रम की सफलता असंभव है। अतः, पोलियो को जड़ से मिटाने के लिए सिर्फ सरकारी प्रयास की नहीं अपितु पूरे देश के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है तभी 'पोलियो' मुक्त विश्व की परिकल्पना चरितार्थ होगी।

संदर्भः

1. वार्षिक रिपोर्ट 2008-09 , स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. गौतम नीरज कुमार, दिव्या पांडे, पोलियो उन्मूलन अभियान (समस्या एवं समाधान)।
3. 'निशीथ' राकेश शर्मा, राष्ट्रीय पल्स पोलियो कार्यक्रम, कुरुक्षेत्र, जुलाई 2005, पृ.सं. 37, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
4. राज प्रतिभा, ग्रामीण क्षेत्रों में पोलियो के प्रति जागरुकता, कुरुक्षेत्र, जुलाई 2005, पृ.सं.34, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
5. गुप्ता डी.के., प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या कार्यक्रम में सामुदायिक सहभागिता, 'धारणा', मार्च 2003, अंक 8, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, मुनीरका, नई दिल्ली।

बाल शिशु स्वास्थ्यः पहल एवं रणनीतियाँ

अनिल कुमार मिश्रा*
वन्दना कुमारी†

भारत में प्रतिवर्ष 10 लाख से अधिक नवजात शिशु जन्म के एक माह के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। नवजात शिशु मृत्युदर में कमी लाना भारत के लिए अभी भी एक चुनौती है। सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (मिलेनियम डेव्लप्मेंट गोल) संख्या 4 को प्राप्त करने के लिए नवजात शिशु मृत्युदर में कमी लाना आवश्यक है। यह भी ज्ञात है कि जन्म के दौरान तथा तुरन्त पश्चात् उचित तैयारी एवं देखभाल नवजात के प्रारम्भिक काल में होने वाली मृत्यु को कम करने में अहम भूमिका निभाते है। यह पाया गया है कि घर पर जाकर बच्चे को देखना भी एक महत्वपूर्ण रणनीति है जिससे मृत्यु की रोकथाम में सहायता मिलती है। फिर भी, अभी तक प्रसवोत्तर देखभाल पर उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.) के अंतर्गत संचालित प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य (आर.सी.एच.-2) कार्यक्रम ने घरेलू, सामुदायिक तथा संस्थागत स्तर पर निर्णायक कमी लाने का प्रयास किया है।

नार्वे-भारत भागीदारी उपक्रम (नीपी) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन संबंधी प्रक्रियाओं में सन्निहित एक अनूठी पहल है। इस कार्यक्रम में शिशु स्वास्थ्य तथा संबंधित मातृ स्वास्थ्य सेवा वितरण को सुधारने हेतु नीपी केन्द्रित राज्यों अर्थात् - उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश को रणनीतिक, लचीला, उत्प्रेरक एवं नवोन्मेषी समर्थन उपलब्ध कराया जाता है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत जननी सुरक्षा योजना की सफलता को अधिकतम कर सकने वाली सक्षम रणनीति के एक भाग के रूप में नीपी द्वारा सुविधा स्तर पर नवजात शिशु तथा माता की परिचर्या संबंधी गुणवत्ता को बेहतर बनाने की एक नवोन्मेषी विधि अभिज्ञात की गई है।

यशोदा/ममता, गैर-चिकित्सकीय, स्वैच्छिक समर्थन कार्यकर्त्ता को अत्यधिक प्रसव संबंधी कार्यभार सौंपकर अस्पतालों में स्थापित किया गया है। उनका कार्य सुविधा में माता एवं नवजात शिशु के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाना तथा घर पर नवजात शिशु की अच्छी परिचर्या करने संबंधी अभ्यासों के बारे में माता को परामर्श देना है।

नार्वे-भारत भागीदारी उपक्रम (नीपी) भारत सरकार और नार्वे सरकार द्वारा सहस्राब्दि विकास लक्ष्य 4 (पाँच वर्ष से कम आयु वर्ग के बच्चों की मृत्युदर को दो-तिहाई तक कम करना) हासिल करने की दिशा में सहयोग करने के लिए प्रतिबद्ध है। नीपी राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.) के एक अभिन्न अंग के रूप में, मिशन के सामरिक, रणनीतिक, नवाचारी और लचीले प्रयासों को नीति कार्यक्रम वाले राज्यों में तीव्र गति प्रदान करने की दिशा में प्रयासरत है।

* पुस्तकालय सूचना अधिकारी, एन.सी.एच.आर.सी., राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।
† छात्रा, एम.फिल., मानव शास्त्र विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य संसाधन केन्द्र के अंतर्गत राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर बाल स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने एवं सार्वजनिक और प्रासंगिक जानकारी के प्रसार और चर्चा तथा बहस के माध्यम से मुख्यधारा से जोड़ने के लिए एक मंच बनाने का लक्ष्य रखा गया है। यह केन्द्र तकनीकी सलाहकार समूह के सहयोग से कार्यरत है, जो बाल स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों की दिशा में प्रमुख संस्थाओं/एजेंसियों के पेशेवरों तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान के समग्र नेतृत्व में एक समूह है।

शिशु मृत्युदर, जनसंख्या संबंधित सबसे अधिक महत्वपूर्ण संवेदी सूचकों में से एक है। वर्तमान में जीवित जन्में प्रति 1000 शिशुओं में से 58 की मौत हो जाती है। (न.प.प.ए. 2005 भारत के महापंजीयक का कार्यालय)। यह हर देश के ग्रामीण क्षेत्रों में 69/1000 जीवित जन्म दर है जो कि शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ज्यादा है, जहां यह 40/1000 जीवित जन्म दर हैं।

		लक्ष्य	
विषय	**वर्तमान स्थिति**	**रा.ग्रा.स्वा.मि. 2012**	**एम.डी.जी. 2015**
शिशु मृत्युदर	58 (न.प.प. 05)	<30	<27
नवजात शिशु मृत्युदर	37 (न.प.प. 04)	<20*	<19*

*अनुमानित

नवजात शिशु की देखभाल

जन्म के दौरान होने वाली मौतों में से आधी नवजात अवस्था (जन्म से 28 दिन) के दौरान ही हो जाती है। अर्थात् एक गाँव में करीब 6 बच्चे जन्म के 28 दिन में ही मौत का शिकार हो जाते है। इसमें से 3 तो पहले सप्ताह में ही मौत का ग्रास बन जाते हैं। ये बच्चे जन्म के समय कम वजन, समय-पूर्व जन्म, जन्म के समय श्वसन अवरोध, धनुशबाय (टिटनस) एवं संक्रमण के कारण मर जाते हैं। इन मौतों को उपयुक्त एवं सामयिक देखभाल द्वारा बचाया जा सकता है।

खतरे वाले नवजात शिशु

निम्नलिखित लक्षणों वाले बच्चों में जन्म से 28 दिन में मौत की संभावना अत्यधिक रहती हैः

1. जन्म के समय कम वजन (ढाई किलो से कम) या समय से पूर्व बच्चे - 50.2%
2. जन्म के समय श्वसन अवरोध या श्वसन का सही न होना - 16.3%
3. नवजात में पीलिया, आँखों व हथेली का पीलापन - 8.7%
4. दौरे आना
5. जन्मजात विकृतियां - 3.3%
6. जन्म के समय चोटे - 2.8%
7. पीने या चूसने में समस्या

शिशु उत्तरजीविता में सुधार के लिए रणनीतियां

1. अतिसार की समुचित चिकित्सा व्यवस्था
2. तीव्र श्वसन संक्रमण की समुचित चिकित्सा व्यवस्था
3. नवजात की अपरिहार्य देखभाल को मजबूत करना
4. प्रतिरक्षीकरण कवरेज के उच्च स्तरों को बनाये रखना
5. विटामिन 'ए' रोगनिरोध
6. मां की देखभाल में सुधार
7. जन्म के अन्तर को बढ़ाना

हालांकि स्वतंत्रता के बाद शिशु मृत्युदर में आधे से ज्यादा कमी आई है पर 2005 में आंकलित वर्तमान दर फिर भी ऊँची है। विकसित देशों में मृत्यु दर 10 या इससे कम है। भारत में भी केरल में शिशु मृत्युदर 12 है। इसी प्रकार गोवा, मणिपुर, त्रिपुरा, अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह और पाण्डिचेरी में भी यह कम है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दूसरे राज्यों में भी शिशु मृत्युदर को कम स्तर तक उतारा जा सकता है, यदि वहाँ जागरूकता में वृद्धि और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार हो। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि गत् कुछ वर्षों में शिशु मृत्युदर बड़ी धीमी गति से कम हो रही है। संभवतः इसका कारण यह है कि टीके से रोकी जा सकने वाली बीमारियों के लिए प्रतिरक्षीकरण के रूप में अधिकांश राज्यों में एक प्रभावी कार्यक्रम चालू है। नवजात की देखभाल सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत प्रसव की वृद्धि करने के, अतिसार से होने वाली मृत्यु और तीव्र श्वसन संक्रमण को नियंत्रण के कार्यक्रम अब भी लचर गति से ही चल रहे हैं। अधिकांश शिशु मृत्यु के लिए ये परवर्ती कारण जिम्मेदार हैं। अतः यह अपरिहार्य है कि परिवारों को कारगर सलाह देकर संस्थागत प्रसव को प्रचारित किया जाए और मौखिक पुनर्जलीकरण चिकित्सा और श्वसन संक्रमणों के उपचार को अत्यधिक सुदृढ़ बनाया जाए, जिससे शिशु मृत्युदर तेजी से कम हो सके।

निष्कर्षः- वस्तुतः शिशु सुरक्षा आज भी हमारे देश में एक दिवास्वप्न बना हुआ है। इस संदर्भ में प्रायः हमारे प्रयास कई जगह असफल हुए हैं क्योंकि गरीबी, लिंगभेद तथा राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव आज भी शिशु के स्वास्थ्य के पर कतरे हुए हैं। जहां लिंगभेद, अज्ञानता तथा गरीबी, महिलाओं व गर्भस्थ शिशुओं के कुपोषण व रक्ताल्पता को जन्म देते हैं वही अनैच्छिक गर्भपात या मृत प्रसव भी उत्तरदायी कारक बन जाते हैं।

अंततः इस दिशा में एक व्यापक और साझे प्रयास की आवश्यकता है। इतने बड़े पैमाने पर इस काम को अंजाम देना अकेले सरकारी तंत्र के लिए संभव नहीं है। सभी संबंधित भागीदारों को अपनी जिम्मेदारी संभालने के लिए कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। यह साझी जिम्मेदारी निश्चित रूप से सूक्ष्म स्तर से होकर व्यापक स्तर पर सकरात्मक परिणाम लाने में सक्षम होगी। यह तभी होगा जब भारतीय शिशुओं की सुरक्षा होगी और उनके स्वास्थ्य के प्रति उत्तरदायी नीतियों का समाज में सही मायने में व्यवहार होगा।

संदर्भः

1. प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम, परिवार कल्याण विभाग, भारत सरकार।
2. जन स्वास्थ्य रक्षक मैनुअल, संचालनालय लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, मध्य प्रदेश।
3. वार्षिक रिपोर्ट 2007-2008, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. प्रमुख योजनाएं और कार्यक्रम, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
5. धारणा, अंक 14, मार्च 2009, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली।

बाल्यावस्था में स्वास्थ्य संबंधी पक्ष

अरविन्द कुमार*

मनुष्य जीवन को मूल रूप से चार अवस्थाओं अर्थात बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था में विभाजित किया गया है, बाल्यावस्था को ही मानव जीवन का प्रारंम्भिक द्वार माना गया है, जिसमें उसके जीवन के कपाट खुलते है। बच्चों में शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की वृद्धि दर तीव्र होने कारण वह अपनी शारीरिक वृद्धि, भावनात्मक एवं सामाजिक पर्यावरण/वातावरण से अधिक संबद्ध होते है और इनमें होने वाले परिवर्तनों के प्रति समझ होती हैं। बाल्यावस्था में ही बच्चों का स्वास्थ्य निर्माण,बौद्धिक क्षमता, शारीरिक विकास उनकी सुरक्षा, परिचर्या गुणवत्ता उनके घरेलू वातावरण,स्वास्थ्य तथा पारिवारिक आर्थिक स्तर आदि पक्षों पर निर्भर करते हैं। बच्चों की शारीरिक वृद्धि तथा विकास प्रक्रिया में प्राकृतिक तथा निर्माण पर्यावरण की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

माता के दूध को शिशु का प्रथम एवं अनिवार्य आहार माना गया है। माता के प्रसवोपरांत गाढे पीले दूध (कोलस्ट्रम) से शिशु का सर्वांगीण विकास होता है तथा बौद्धिक क्षमता एवं रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों और चिकित्सकों द्वारा शिशु को प्रथम 6 माह तक माँ के दूध के अतिरिक्त अन्य कोई भी आहार न दिये जाने के बारे में माता पिता तथा परिवार में अन्य संबंधित महिला सदस्यों को शिक्षित किया जाता है। माता द्वारा बच्चे को उसकी बाल्यावस्था में अधिक समय (तीन-चार वर्ष) तक स्तनपान कराने से उसके स्वास्थ्य विकास वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा भी शिशु को माता के दूध देने अर्थात स्तनपान कराने पर बल दिया गया है, जिससे उसके जीवन की ठोस बुनियाद का निर्माण हो सके।

संतुलित आहार

छः माह से एक वर्ष के पश्चात बच्चों को माता के दूध के अतिरिक्त अन्य संतुलित ठोस आहार दिए जाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के आहार में निम्नलिखित तत्व/घटक होने चाहिएः

1. प्रोटीन (दालें,सेब,गेहूँ,मांस,अण्डे आदि)
2. कार्बोहाइड्रेट (ऊर्जा वर्द्धक आहार आदि)
3. वसा (चिकनाई, घी,मक्खन आदि,)
4. विटामिन (ए,बी,सी, तथा डी आदि)
5. खनिज-तत्वयुक्त आहार आदि

माता द्वारा बच्चों को दिए जाने वाले संतुलित आहार में उपरोक्त घटकों का संतुलन होना अत्यंत आवश्यक है। चूंकि, बच्चों की पाचन तंत्र प्रणाली तथा शारीरिक अंग कोमल तथा

* हिन्दी अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

संवेदनशील अवस्था में होते है, इसलिए किसी भी घटक की आहार में न्यूनता अथवा अधिकता उन्हें हानि पहुंचा सकती है। उदाहरण के रूप में बच्चे के आहार में यदि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा किसी भी विटामिनयुक्त खाद्य पदार्थ की अधिकता हो तो उसके पाचन तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और उसे उल्टी, दस्त, पेट दर्द अथवा अन्य प्रकार के रोग हो सकते हैं।

अनिवार्य पौष्टिक तत्व विटामिन

आहार विशेषज्ञों ने बाल्यावस्था में बच्चों के भोजन में विटामिन तत्व का होना अनिवार्य माना है। उनके अनुसार मनुष्य के भोजन में शुद्ध वसा प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य खनिज तत्वों के होने तथा विटामिनों के अभाव में खाद्य पदार्थो को पूर्ण नही माना जाता है। इनके अभाव में शरीर की पूर्णतः शुद्धि, विकास तथा ऊर्जा प्राप्ति संभव नहीं है। अतः अनेक विटामिनों अर्थात ए,बी,सी, एवं ई युक्त भोजन बच्चों को प्रारंभिक बाल्यावस्था से देना अत्यंत आवश्यक है। शरीर में इनकी आवश्यकता सूक्ष्म रूप में होती है तथा विशेषकर ताजे खाद्य पदार्थो में यह प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। इसलिए बच्चों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था से भोजन में विटामिन **'ए'** युक्त पदार्थ (दूध,मक्खन,अण्डे,मछली तेल आदि) संतुलित रूप से दिए जाने चाहिए, ताकि उनकी अस्थियों, तंत्रिकाओं तथा कोशिकाओं का विकास भली भांति हो सके। विटामिन ए बच्चों के नेत्र स्वास्थ्य एवं दृष्टि रक्षा को सुदृढ़ बनाने के लिए भी आवश्यक है। इसी प्रकार, बाल्यावस्था से ही बच्चों को विटामिन बी,सी,डी, तथा ई से भरपूर भोजन दिया जाना चाहिए।

माताओं द्वारा बच्चों को पोषक आहार देते समय आहार में अन्य पोषक घटकों अर्थात् लौह (आयरन) तथा आयोडीन से पूर्ण तत्वों का ध्यान रखा जाना चाहिए। शिशुओं के संतुलित आहार में काले चने का सूप, आलू, दलिया, पालक इत्यादि शामिल होने चाहिए। आयोडीन बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए एक अनिवार्य घटक माना गया है, इसलिए भोजन में हमेशा आयोडीनयुक्त भोज्य-पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त विटामिनों की पर्याप्त प्रचुरता का भी ध्यान रखा जाना चाहिए, जिससे कि वह शारीरिक रूप से स्वस्थ, उर्जावान होने के साथ-साथ दिमागी रूप से भी चुस्त रहें। भोजन में विटामिन की पर्याप्तता संबंधी तथा इनके अभाव में होने वाले विकारों का विवरण निम्न प्रकार से हैः-

विटामिन	अभाव में विकार	भोज्य-पदार्थ
ए	खराब दृष्टि, कमजोर रोग प्रतिरोधक क्षमता/संक्रमण रोधक क्षमता	गाजर, मीठे आलू, खुमानी, पनीर, दूध, अण्डा, मांस, हरी पत्तेदार सब्जियां आदि
बी	थकान, कमजोर पेशियां, त्वचा रोग आदि	मोटा अनाज, सूखे बीन, आलू, पालक, पपीता, मटर, खमीर, मेवे, बादाम, हरी पत्तेदार सब्जी, अंकुरित अनाज
सी	शीघ्र संक्रमण, घाव धीरे भरना, दांत व मसूड़ों की समस्या, थकान होना तथा भूख की कमी आदि	खट्टे फल, खरबूजा, स्ट्रॉबेरी, हरी व लाल मिर्च, आम, संतरा, अनानास, पालक, पत्तागोभी आदि
डी	हड्डियों का कमजोर होना, मांसपेशी की कमजोरी आदि	मछली तेल, दूध, पनीर, अण्डा आदि
ई	तंत्रिका प्रणाली में विकार होने की कुछ संभावना रहती है	ताड, सूरजमुखी, जैतून, सोयाबीन का तेल, गेहूँ का चोकर आदि

बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ उनके शरीर को संक्रमण के तथा रोग प्रतिरोधक बनाना भी आवश्यक है। इसलिए उन्हें संतुलित आहार देने से शारीरिक वृद्धि विकास संबंधी पक्ष सुदृढ़ होते हैं। बच्चों की सामान्य बाल्यावस्था से स्वास्थ्य संबंधी सभी पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। बच्चों में स्वास्थ्य का विकास भली भांति हो रहा है अथवा नहीं। बाह्य रूप अथवा शरीर से स्वस्थ प्रतीत होने वाले बच्चों में भी कई बार रोगग्रस्त होने की शैली देखी गई है, उदाहरणस्वरूप - खाँसी-जुकाम, दस्त, पाचन क्रिया संबंधी रोग,ज्वर होना, दृष्टि एवं अन्य किसी प्रकार की स्वास्थ्य समस्याऐं इनमें शामिल हैं। अनेक बच्चों को घर में अच्छा व संतुलित भोजन उपलब्ध होता है, किन्तु उसके अनुसार उनके स्वास्थ्य का विकास नही हो पाता है। वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी स्वास्थ्य समस्या से ग्रस्त रहते हैं।

भोजन प्रवृत्ति में अनियमितता

सामान्यतः वर्तमान संदर्भ में बाल्यावस्था में बच्चों को उत्तम आहार देने तथा प्रचुर मात्रा में पोषण आहार देने के क्रम में माताओं द्वारा भोज्य-पदार्थो की अधिकता करा दी जाती है अथवा अनियमितता कर दी जाती है, अर्थात भोजन में दूध,अनाज,विटामिनयुक्त फल-सब्जियों तथा सूखे मेवों की अधिकता कर दी जाती है। इसके कारण बच्चे या तो रोगग्रस्त हो जाते हैं, अन्यथा उनके स्वास्थ्य पर इनका अनुकूल प्रभाव नही पड़ता है।

आजकल माताओं द्वारा आरंभिक बाल्यावस्था में शिशु को स्वयं की सौंदर्य रक्षा संबंधित पूर्ण जानकारी न होने अथवा आधुनिकता की होड में स्तनपान न कराकर डिब्बाबंद दूध सेरेलक भोज्य-पदार्थ देने की प्रवृति कभी-कभी देखने को मिल जाती है। ऐसी माताओं द्वारा शिशु को कालांतर में भी बाजार निर्मित आहार देने की प्रवृत्ति में सामान्यतः उच्च परिवारों में देखने को मिलती है इन माताओं को अपने शिशु को कितने पोषक तत्व भोजन से प्राप्त हो रहे हैं, इसका सामान्य बोध नही होता है।

बच्चों में मोटापे की प्रवृत्ति

आजकल दैनिक भोजन में अनियमितता, समय व बारम्बारता का सही ज्ञान न होना,भोजन के पोषक मूल्यों के प्रति भली भांति अवगत न होना तथा बाजार निर्मित आहार पर निर्भरता व रूचि के कारण बच्चों में मोटापे की समस्या भी देखी जा रही है। इसके लिए अनेक परिवारों में माता को यह ठीक पता नहीं होता कि बच्चे को कौन सा भोजन कब दिया जाना उचित है। उनके द्वारा बच्चे को दिए जा रहे आहार का उसकी स्वास्थ्य वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव तो नही पड़ रहा है। बाल्यकाल में बच्चों में स्थूलता अथवा मोटापें की समस्या सामान्य होती जा रही है। इसके कारण बच्चों में अनेक स्वास्थ्य समस्याऐं बढ़ रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैंः

1. माता पिता को बच्चों के स्वास्थ्य संबंधी पक्षों का समुचित ज्ञान न होना;

2. संतुलित भोजन की अनिवार्यता की अनदेखी, बाजार निर्मित आहार पर अधिक निर्भरता;

3. शिशु परिचर्या एवं विकास संबंधी तथ्यों की पूर्ण जानकारी न होना; एवं

4. अनियमित भोजन शैली तथा व्यायाम एवं शारीरिक श्रम की प्रवृत्ति का अभाव।

कुपोषण की समस्या

बाल्यावस्था में बच्चों को सही समय पर तथा आयु वर्ग के अनुसार संतुलित भोजन न दिए जाने पर उनमें कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा इसके इतर एवं प्रतिकूल प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर दिखने लगते है। आज भी हमारे देश में अनेक बच्चे उचित भोजन अथवा भोजन के अभाव में कुपोषण की समस्या के शिकार हैं। कुपोषण की समस्या प्रत्यक्ष संतुलित भोजन जैसे - दूध,फल,दालें,हरी सब्जियों,अण्डे, मांस इत्यादि खाद्य पदार्थो के आयुनुसार बच्चों को न देने तथा इनके अभाव से संबद्ध है। इस प्रकार संतुलित भोजन अथवा भोजन का अभाव होना तथा इसके गुण आदि के बारे में समुचित बोध न होना अलग-अलग पक्ष हैं।

शहरी स्लम बस्तियों तथा देश के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में बसे निम्न आय तथा निर्धन जन-समुदाय के बच्चों को कुपोषण से बचाने संबंधी प्रयासों के अन्तर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन तथा एकीकृत बाल विकास योजना कार्यक्रम में अनेक स्थानों पर बालवाड़ी तथा आँगनवाड़ियों की स्थापना की गई है। इनमें कार्यरत कर्मचारियों द्वारा लोगों को बाल स्वास्थ्य, पोषक आहार के महत्व, स्वच्छता, स्वच्छ जल का प्रयोग करने, बच्चों को स्वास्थ्य केन्द्र लाने आदि के बारे में आवश्यक सूचनायें देकर शिक्षित किया जाता है। स्वास्थ्य केन्द्रों में बच्चों को समय पर टीके लगाए जाने की जानकारी दी जाती है। स्वास्थ्य केन्द्रों में कार्यरत कार्यकर्त्ताओं द्वारा कुपोषित बच्चों को विटामिन युक्त आहार, औषधियां इत्यादि दी जाती है। आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता द्वारा बाल्यावस्था में बच्चों को स्वस्थ रखने, गंदगी व संक्रमण से बचाव तथा समय पर टीके लगवाने इत्यादि के बारे में बच्चों के माता-पिता को शिक्षित किया जाता है। आँगनवाड़ी केन्द्रों/स्वास्थ्य केन्द्रों में बच्चों के स्वास्थ्य संबंधी निम्नलिखित सेवायें उपलब्ध कराई जाती हैः

क. संपूरक/पोषक आहार प्रदान करना;

ख. बच्चों का टीकाकरण;

ग. बाल-परिचर्या;

घ. रोग-उपचार करना;

ड. स्वास्थ्य शिक्षा प्रसार।

देश के अनेक भागों में गाँव-कस्बों तथा देहात क्षेत्रों में अनेक परिवारों के समक्ष दो समय के भोजन प्राप्ति की ही समस्या व्याप्त है। ऐसी स्थिति में भोजन का मिलना ही बडी बात रहती है, संतुलित भोजन देने पर माताएं कैसे सोच सकती है। इस प्रकार के परिवारों में बच्चों के लिए मूल खाद्य पदार्थ दूध ही दे पाने की समस्या बनी रहती है। विशेषतयाः जिन परिवारों में माता ही कुपोषित व रोगग्रस्त हो वह माता अपने बच्चों के स्वास्थ्य का समुचित रूप से किस प्रकार ध्यान रख सकती है। निम्न आय वाले परिवार में बच्चों का संतुलित भोजन देने पर कम केवल भोजन (रोटी-सब्जी) देने पर ध्यान रहता है, जिससे पूरी बाल्यावस्था में उनका स्वास्थ्य प्रभावित रहता है।

बच्चों की अच्छी परिचर्या तथा उन्हें भली भाँति विकसित करने के लिए अच्छा संतुलित भोजन उपलब्ध कराना तथा उन्हें अपने स्वास्थ्य की समुचित देखरेख करने के लिए शिक्षित करना एक प्राथमिक अनिवार्यता है। माताओं को उन्हें बाजार निर्मित तथा केवल स्वादिष्ट खाद्य

पदार्थो डिब्बाबंद खाद्य पदार्थो से होने वाली हानि के बारे में शिक्षित करना भी आवश्यक है। यद्यपि कम आयुवर्ग (6 माह - 3 वर्ष) के बच्चों में यह बात माता के ज्ञान स्तर पर बहुत अधिक निर्भर करती है। यदि माता को संतुलित भोजन के बारे में समुचित जानकारी नही होगी तो वह बच्चे के भोजन तथा स्वास्थ्य संबंधी अन्य पक्षों अर्थात भोजन पूर्व हाथ अच्छी प्रकार धोने,भोजन पश्चात दाँत साफ करने, नाखून काटने, प्रातःकालीन भ्रमण तथा व्यायाम करने के लाभ इत्यादि के बारे में बच्चे को शिक्षित नही करा पाएगी। बच्चे को माता स्वयं शिक्षित होने पर ही स्वास्थ्य परिचर्या संबंधी आवश्यक पक्षों की जानकारी दे सकती है।

स्कूली बच्चों का स्वास्थ्य

प्राथमिक स्कूली शिक्षा ग्रहण करने वाले बच्चों की अपनी स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताएं होती हैं। इस आयु वर्ग के बच्चों को माता जैसा शिक्षित करेंगी, उनके भोजन स्वास्थ्य तथा अन्य संबंधित पक्षों का ध्यान रखेगी, उसी के अनुरूप उनका स्वास्थ्य एवं मानसिक स्तर ढ़लने लगता है और उनका भावी व्यक्तित्व भी वैसा ही आकार लेता है। शिक्षा के इस प्रारम्भिक चरण में उनकी प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है, किसी पक्ष से उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित न हो यह भी ध्यान रखने की माता पिता को बहुत आवश्यकता है।

स्वच्छता

माता द्वारा बाल्यावस्था में बच्चों के शरीर, वस्त्रों आदि की साफ-सफाई एवं स्वच्छता रखने के लिए बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है। सामान्यतः बच्चों को जल, मिट्टी, गंदगी इत्यादि से संक्रमण, दस्त, त्वचा-रोग आदि होने की संभावना रहती है तथा वह पेट-दर्द, उल्टी, दस्त से ग्रस्त हो जाते है। इनका विशेष रूप से ध्यान रखा जाना जरूरी है। इसके लिए बच्चों को स्वच्छ जल पीने के लिए देना चाहिए तथा यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वह गंदे पानी में न खेलें, जिससे कि उन्हें उल्टी, दस्त अथवा त्वचा संक्रमण जैसे रोग न हो सकें। बाल्यावस्था में बच्चों में निजी स्वच्छता जैसे भोजन से पहले हाथ साबुन से धोना, मुँह साफ करना, दाँत साफ करने, नाखून काटने आदि के बारे में बताना तथा अभ्यास कराना भी अनिवार्य है, ताकि अनेक रोगों से बचाव हो सके।

नींद

अच्छे स्वास्थ्य के लिए जैसे संतुलित भोजन उत्तम स्वास्थ्य परिचर्या, नियमित व्यायाम आवश्यक है उसी प्रकार से बाल्यावस्था में बच्चों की अच्छी नींद का भी माता को ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य के लिए उन्हें पर्याप्त नींद आना भी बहुत आवश्यक है। कई बार नींद ठीक न आने से बच्चे चिडचिडे व क्रोधी हो जाते है तथा इसका उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। स्कूली बच्चों के संदर्भ में तो अच्छी नींद का महत्व और भी बढ जाता है क्योंकि शिक्षा के प्रारंम्भिक चरण में उनकी मस्तिष्क प्रणाली धीरे-धीरे सक्रिय होने लगती है।

बाल्यावस्था में बच्चों का स्वास्थ्य समुचित रूप से विकसित करने की दिशा में पर्याप्त रूप से शिशु परिचर्या पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए जब तक माता-पिता

को शिशु परिचर्या, उनकी स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं, संतुलित आहार, बाजार निर्मित खाद्य पदार्थो के लाभ-हानि, व्यायाम इत्यादि की भूमिका के बारे में पूर्ण व समुचित ध्यान नही होगा, तब तक वह उनके संपूर्ण विकास पर ध्यान केन्द्रित नही कर पाएगें। इसके लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (उप-केन्द्रों) सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों व अस्पतालों में स्वास्थ्य शिक्षा संसाधन प्रकोष्ठ की स्थापना करना एक कारगर उपाय हो सकता है। तथा इसी स्तर पर बच्चों के स्वास्थ्य का रिकार्ड भी रखा जा सकता है।

बच्चों का स्वास्थ्य ठीक रखना तथा उसका समुचित विकास करना प्रत्येक माता -पिता एवं अनुजों का प्राथमिक दायित्व है तथा बाल्यावस्था ही वह अवस्था है जिसमें हम बच्चों के स्वास्थ्य पक्षों पर समुचित रूप से ध्यान देकर उनके व्यक्तित्व की सुदृढ़ बुनियाद रख सकते हैं।

संदर्भः

1.चाइल्डहुड हैल्थ एण्ड नीड्स संबंधी वेबसाइट सामग्री।
2.www.W.H.O.int/child,adolecent health संबंधी सामग्री।

किशोर स्वास्थ्य व बदलते सामाजिक परिदृश्य

गणेश शंकर श्रीवास्तव*
कृष्ण चन्द्र चौधरी†

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरों का आयु वर्ग 10-19 वर्ष के मध्य माना गया है। आज भारत में किशोरों की आबादी 22 करोड़ 50 लाख (जनगणना 2001) है। भारत की पूरी जनसंख्या का लगभग 22% किशोरवय (जनगणना 2001) युवक-युवतियों द्वारा गठित है। इस जनसंख्या वर्ग में किशोरावस्था ही वह अवस्था है जिसमें वह सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों द्वारा सबसे अधिक संवेदित होते हैं। यही वह अवस्था है जब शारीरिक और मानसिक परिवर्तन एवं वृद्धि अपने अत्यधिक वेग में होती है। इस आयु में किशोरवय युवक-युवतियों पर अच्छी तथा बुरी आदतों का शीघ्र प्रभाव होता है। चूंकि,यह शारीरिक एवं मानसिक संक्रमण की आयु है, अतः इस आयु में किशोरों कें विभिन्न पक्षों की दृष्टि से समन्वय बनाए रखना नितान्त आवश्यक होता है। इस आयु में शारीरिक, मानसिक,सामाजिक तथा विचाराभिव्यक्ति के तरीकों में अत्यधिक परिवर्तन होते हैं। बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के इस युग में किशोरवय युवक-युवतियों के माता पिता एवं संबंधियों के पास इतना समय नहीं होता कि वह अपनी किशोरवय संतान की त्रस्त करने वाली शारीरिक/मानसिक समस्याओं पर पर्याप्त ढंग से ध्यान दे सकें। ऐसी स्थिति में किशोर वर्ग स्वयं को उपेक्षित एवं अलग-थलग अनुभव करता है और अपनी अधकचरी समझ के अनुसार स्वयं निर्णय करने का अभ्यस्त हो जाता है। वह अपने संबंधित व्यक्तियों,जिनसे उसका भावनात्मक लगाव होता है उनकी ओर आकर्षित होकर उनके अच्छे व बुरे गुणों को अपनाता है।

देश की आगामी सामाजिक-आर्थिक एवं अनन्य आवश्यकतायें इन किशोरों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति पर बहुत कुछ सीमा तक निर्भर हो जाती हैं जैसे कि प्रजनन स्वास्थ्य,संक्रमित रोग,एच.आई.वी./एड्स रोग, सह शिक्षा,स्वस्थ जीवन शिक्षा,जनसंख्या स्थिरीकरण आदि। इस दिशा में सरकार द्वारा कुछेक प्रयास किए गए हैं--किशोर स्वास्थ्य पहल के अन्तर्गत राष्ट्रीय सेवा योजना,नेहरू युवा केन्द्र संगठन,राष्ट्रीय कैडर का एवं अन्य संस्थाओ के द्वारा उनके सामाजिक,सांस्कृतिक व मानसिक/शारीरिक उत्थान के लिए विभिन्न कार्य करके मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जाता है।

अनुकूल किशोर स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से उदाहरण के रूप में भारत में दो स्थानों अम्बाला (हरियाणा) और मिदनापुर (प. बंगाल) में किशोरों की सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके सफल हो जाने के उपरान्त आने वाले वर्षों में देश के प्रत्येक जिले में अनुकूल किशोर स्वास्थ्य सेवाएं प्रारंभ की जाएंगी।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 के अन्तर्गत किशोरों के स्वास्थ्य के प्रति निम्नलिखित बिन्दुओं पर दृष्टि डाली गईः

* उप-संपादक (हिन्दी), राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।
† परामर्शदाता, विश्वविद्यालय स्वास्थ्य केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,नई दिल्ली-110067।

- किशोरों को वांछित सूचनाएं उपलब्ध कराना जैसे-पोषक आहार,गर्भनिरोधकों की उपलब्धता, यौन संक्रमित रोग तथा जनसंख्या विषयक अन्य जानकारी।
- यौन एवं प्रजनन संबंधी आवश्यकताएं।
- जनसंख्या स्थिरीकरण में किशोरों की भूमिका।
- बाल-विवाह, कम उम्र में गर्भ, गर्भ में अन्तराल इत्यादि।

इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं को जन साधारण तक पहुँचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया, इसके अन्तर्गत निम्न तथ्य हैंः

- मातृ एवं स्वास्थ्य सेवाओं के अन्तर्गत किशोर बालिकाओं को बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं के साथ रखा गया।
- किशोर बालिकाओं के लिए पौष्टिक/संतुलित आहार की आवश्यकता पर बल।
- स्वास्थ्य एवं जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई।
- रोकथाम स्वास्थ्य शिक्षा, स्वास्थ्य परीक्षण और स्वास्थ्य संबंधी व्यावहारिक जानकारी को लक्षित करते हुए विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम को प्राथमिकता।
- एच.आई.वी./एड्स इत्यादि यौन संचारित रोगों से बचाव के लिए किशोरों के व्यावहारिक बदलाव के लिए प्रयासों पर बल।

राष्ट्रीय युवा नीति 2003 में पांच विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया हैः

1. सामान्य स्वास्थ्य - पौष्टिक तत्व, लौह तत्व की कमी, रक्ताल्पता, हाईजीन एवं स्वच्छता और शारीरिक व्यायाम आदि।
2. मानसिक स्वास्थ्य - जीवन की चुनौतियों से लड़ने के योग्य बनाना, मुफ्त परामर्श सेवाएं प्रदान करना।
3. आध्यात्मिक स्वास्थ्य - योग एवं ध्यान।
4. एच.आई.वी./एडस यौन संचारित रोग - असुरक्षित यौन-संबंध से बचाव जिसमें मुख्य रूप से प्रजनन व यौन स्वास्थ्य शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं आदि प्रदान करना।
5. जनसंख्या शिक्षा - विवाह की वास्तविक आयु एवं जीवन में जिम्मेदारियों की समझ के तहत जिम्मेदाराना यौन व्यवहार पर जोर दिया गया।

नाको NACO (राष्ट्रीय एडस नियंत्रण संगठन) 2008 के अनुसार, वर्तमान में 20 लाख 45 हजार लोग एच.आई.वी. पाजिटिव है जो 15-45 आयु वर्ग के है। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम चरण III (2007-12) में किशोरों को जागरूकता और सूचना देने के लिए ' रेड रिबन क्लब ' के द्वारा शिक्षित करने का प्रावधान किया गया है। ये किशोर ज्यादा असुरक्षित होते है और प्रयोगधर्मी होते है जिससे विभिन्न प्रकार के रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। भारत सरकार युवाओं खासकर किशोरों में एच.आई.वी./एड्स का जोखिम कम करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम एवं नीतियां संचालित कर रही हैं। सामाजिक मूल्यों का प्रभाव व्यक्तिगत किशोरों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। पिछले दो दशकों से जागरूकता बढ़ाने में मीडिया की मुख्य भूमिका है। किशोरों को असुरक्षित यौन-संबंध से बचाने के लिए भारत सरकार की अनेक योजनाए हैं, जैसे -

किशोर स्वास्थ्य पहल, एच.आई.वी./एड्स शिक्षा, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2002), राष्ट्रीय युवा नीति आदि।

आज के किशोर चाहते हैं, कि अभिभावक उनसे मित्रवत व्यवहार करें और उन्हें एक दोस्त की तरह बताएँ/समझायें। आज-कल के बच्चे बिना तर्क के और बिना कारण के आपकी बात पर गौर नहीं करते। आधुनिक बच्चों में शेयरिंग की आदत ही नहीं होती है और अधिकांश बच्चे 'सेल्फ सेंटर्ड' होते हैं। जैसे कि, जो उन्हें चाहिए, वह किसी भी कीमत पर चाहिए होता है, नहीं तो आसमान सिर पर उठा लेते है। वे अपने आप को दोस्तों के बीच सहज व स्वतंत्र पाते हैं। शेयरिंग से ज्यादा जरूरी है, कि वे घर के दूसरे सदस्यों का सम्मान व परवाह करें। फलतः महानगरों में टीनएजरों की दुनिया अलग होती है जिसका कारण खुला माहौल है। साथ-ही-साथ स्कूल का वातावरण भी खुला होता है।

अभिभावको को चाहिए कि धैर्य, संयम और समझदारी से काम लें। अंततः टीनएजरों को लगता है, कि उन्हें उनके अभिभावक समझ नहीं पा रहें हैं और जिसके तहत एक बड़ा 'जनरेशन गैप' हो जाता है। उनके माता-पिता को भी अपने समय में भी यही लगता था। अभिभावक चाहे जितनी कोशिश करें, बच्चों की समझ को विकसित होने में समय लगता है। इससे पूर्व अभिभावक सिर्फ प्रयास ही कर सकते हैं।

बच्चों के भविष्य के लिए सबसे जरूरी है, भावनात्मक सुरक्षा। बच्चों को सुरक्षा की वह छांव चाहिए, जहां वे यह महसूस कर सकें कि अभिभावकों का साथ और हाथ उन पर हमेशा बना रहेगा। इसके अलावा बच्चों को शारीरिक तौर पर मजबूत और तंदुरूस्त बनाने की जिम्मेदारी भी अभिभावकों की होती है। उनमें अच्छी आदतों के संस्कार पैदा करें, व्यायाम, फिटनेस, रचनात्मकता, स्वच्छता, दूसरों के प्रति संवेदनशीलता के साथ-साथ उनका संपूर्ण व्यक्तित्व विकसित करने में सहयोग करें, ताकि भविष्य में वे एक सही व संतुलित इंसान बन सकें। यही नहीं, बच्चों को सेक्स शिक्षा भी दें, माँ बेटी को तथा पिता बेटे को। इसके साथ-साथ उन्हें विपरीत लिंग के साथ सम्मानजनक व्यवहार करने को प्रेरित करें।

किशोरों पर मीडिया का प्रभाव

सूचना व जागरूकता का आधार बनाने वाले मीडिया को हमेशा से सराहा तथा यदा-कदा कोसा भी जाता रहा है। जानकारी किसी के लिए रक्षा करने वाली ढ़ाल बनती है, तो किसी के लिए लड़ाई करने वाला हथियार। उसके उपयोग व दुरूपयोग को लेकर मीडिया की प्रशंसा तथा आलोचना की जाती है, तो भारतीय समाज में मीडिया की भूमिका, मुख्य रूप से नैतिकता के संदर्भ में देखी जाती है।

आज के बच्चे ज्यादा जागरूक और जानकार हो गए हैं। इस बदलाव के लिए मीडिया का अमूल्य योगदान है। आए दिन सार्वजनिक जीवन में अश्लीलता बढ़ाने का ठीकरा भी मीडिया के सिर मढ़ा जाता है। बच्चों के टीवी, फिल्मों व इंटरनेट के इस्तेमाल पर कोई पाबंदियां नहीं रह गई हैं।

आज-कल के बच्चे 'सोशल (आरकुट, फेसबुक, नेट वर्किंग वेबसाइट) का उपयोग कर रहे हैं। जिसमें बड़े शहरों व महानगरों में रहने वाले बच्चे मुख्य रूप से हैं। इस सूचना के युग में और मीडिया बूथ से युवा पीढ़ी का ज्ञान बढ़ा है और साथ-ही-साथ वे जागरूक हुए हैं तथा अन्य दूसरे पक्षों से उनका साक्षात्कार हुआ है अर्थात काले पक्ष से सभी रू-ब-रू हो गए हैं। मीडिया के माध्यम से बच्चों की पहुँच जिस हद तक हो गई है, उसे लेकर अभिभावक परेशान हैं व इस चिंता के चलते वह टीवी, इंटरनेट आदि के इस्तेमाल पर नियंत्रण के तरीके खोज रहे हैं।

जनसंचार का प्रभाव आज के किशोरों के लैंगिक व्यवहार पर भी पड़ रहा है। प्रायः आकर्षक मॉडलों के ऐसे चित्र पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं, जो कि अश्लील व लैंगिक उत्तेजना बढ़ाने वाले होते हैं। इससे किशोरों में सेक्स संबंधी अपराध बढ़ रहे हैं। पत्रिकाओं में भद्दा, सेक्स संबंधी, पश्चिमी संस्कृतियों आदि के चित्रों का उपयोग महिलाओं को आधार बनाकर किया जाता है। आज की युवा पीढ़ी सोचती है कि लड़के या लड़कियों के लिए विपरीत लिंगों के साथ सम्पर्क बनाना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है। अगर लड़के या लड़कियाँ तंग कपड़े पहनते हैं, तो लोगों को अंतरंग वस्त्र के विज्ञापन सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। किशोर मुख्य रूप से फिल्मी या पॉप समाचार, अपराध समाचार आदि से ज्यादा संतुष्ट होते हैं। ये समाचार पत्रों का चुनाव लैंगिकता या उत्तेजक दृश्यों के आधार पर करते हैं। आज के रीमिक्स वीडियो में ज्यादा नग्नता, अश्लील गतिविधि व उत्तेजना पायी जाती हैं।

आज के किशोर इंटरनेट का अधिक उपयोग करते हैं। ये सामाजिक वेबसाइट या दोस्तों के समूह के सदस्य होते हैं, जैसे कि आरकुट या फेसबुक आदि। ये दोस्तों के समूह वाले वेबसाईट के उपयोग से विभिन्न समुदायों के लोगों से सम्पर्क और विचार विनिमय करते हैं। साथ-ही-साथ अपना मूल फोटोग्राफ या व्यक्तिगत जानकारी भी भेजते हैं।

किशोरावस्था शिक्षा

किशोरावस्था शिक्षा यौन शिक्षा से भिन्न है, यद्यपि इसमें किशोरावस्था के दौरान होने वाले यौन विकास से संबंधित विषयवस्तु शामिल होती हैं। यौन शिक्षा में प्रमुख रूप से यौन व्यवहार केंद्रित विषयवस्तु को शामिल किया जाता है, जबकि किशोरावस्था शिक्षा किशोर-किशोरियों के सरोकारों पर केंद्रित है। यौन शिक्षा के उन तत्वों को विद्यालयी शिक्षा में समाहित करना आवश्यक है, जिसका संबंध किशोर/किशोरियों की समस्याओं व अभिरूचियों से है। ये क्षेत्र हैं :- (i) किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तन व विकास, (ii) एच.आई.वी. एवं एड्स, तथा (iii) नशीले पदार्थों का सेवन।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में तो किशोरावस्था शिक्षा को एक अहम स्थान दिया गया है। इसका उद्देश्य जीवन कौशल की क्षमताएँ विकसित करना है, जिससे किशोर प्रजनन और यौन स्वास्थ्य से संबंधित विषयों व समस्याओं पर जिम्मेदारपूर्ण व्यवहार कर सकें। किशोरों/किशोरियों से सज्जनशीलता, सहनशीलता, स्वजागरूकता, धैर्य, आत्मविश्वास, रचनात्मक दृष्टिकोण, संप्रेषण कौशल, भावनाओं पर नियंत्रण रखने का कौशल, अवांछित दबावों का सामना करने का कौशल आदि का विकास करने में अभिभावकों की प्रभावशाली भूमिका होती है।

जनसम्पर्क का माध्यम शक्तिशाली माध्यम है जो युवाओं की मानसिक सोच को बदलने में सक्षम है। आज के परिदृश्य में हर किशोर इससे रूबरू हो रहा है। आए दिन नग्नता, सैक्स, सॉफ्ट पोर्नोग्राफी, ड्रग, लिव-इन-रिलेशनशिप इत्यादि के बारे में जानकारियां प्रसारित होती रहतीं हैं, जिससे किशोर मन उस ओर भटक जाता है, तथा चकाचौंध भरी जिंदगी की ओर अग्रसर हो जाता है। कुल मिलाकर, देश का सामाजिक परिदृश्य बदल रहा है, अतः आज भारतीय समाज में यौन-शिक्षा एक संवेदनशील विषय के रूप में न सिर्फ देखा जाना चाहिए बल्कि किशोरों के लिए यौन शिक्षा के प्रति कुछ ठोस नीतियों का क्रियान्वयन भी अपेक्षित है।

संदर्भ :

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005।
2. www.unfpa.org.in (डब्लयू.डब्लयू.डब्लयू.यू.एन.एफ.पी.ए.ओ.आर.जी.)।
3. पॉपुलेशन एजुकेशन बुलेटिन, जनवरी, 2008, (Population Education Bulletin, January, 2008, Vol.-16, No. 1&2)।
4. राष्ट्रीय युवा नीति, 2003।

हरियाणा में स्वास्थ्य शुल्कः एक सफल प्रयोग

डॉ. प्रदीप कुमार*

वर्तमान युग भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण का युग है। समूचे विश्व में आर्थिक क्षेत्र में आने वाले इन तीनों विषयों पर काफी चर्चा है। गत दो वर्षों से पूरे देश में विभिन्न क्षेत्रों जैसे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि सुधारों की लहर है। इन सुधारों का अधिक प्रभाव प्रत्यक्ष आर्थिक गतिविधियों वाले क्षेत्र जैसे बैंकिंग, बीमा, संचार आदि पर अधिक पड़ा है परंतु दूसरे सामाजिक क्षेत्र जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा आदि भी इस प्रभाव से अछूते नहीं हैं।

स्वास्थ्य क्षेत्र सामाजिक क्षेत्र की श्रेणी में आता है। पिछले कुछ वर्षों से इस क्षेत्र पर विभिन्न सरकारों का काफी ध्यान रहा है। नीति निर्धारकों द्वारा इस बात पर काफी बल दिया गया है कि बिना मानव विकास के आर्थिक विकास को प्राप्त नहीं किया जा सकता। आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करने का साधन मानव विकास है। मानव विकास द्वारा मानव निर्माण किया जा सकता है।

स्वास्थ्य शुल्क का इतिहास

वास्तव में 1970 के दशक में आर्थिक मंदी के दौरान स्वास्थ्य शुल्क का इतिहास तलाश किया जा सकता है। दरअसल 1970 के दशक में आर्थिक मंदी के कारण विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, एशिया विकास बैंक इत्यादि पर वित्त की कमी की समस्या आ गयी और इनके द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न विकास कार्यक्रमों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इन संस्थाओं द्वारा विभिन्न विकासशील एवं अविकसित देशों में चलाए जा रहे कार्यक्रमों के वित्तपोषण में काफी समस्या आ गई। इस समस्या से निपटने के लिये इन संस्थाओं ने इन कार्यक्रमों की वित्तपोषणता के लिए वैकल्पिक उपाय सोचने प्रारंभ किए। स्वास्थ्य शुल्क (युजर चार्ज) भी इन्हीं वैकल्पिक उपायों में से एक है। इस प्रकार स्वास्थ्य शुल्क का प्रारंभ आर्थिक मंदी से निपटने के लिए और स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने के लिए किया गया। स्वास्थ्य शुल्क, स्वास्थ्य की कुल लागत नहीं बल्कि यह तो एक टोकन राशि है जो किसी स्वास्थ्य सेवा की प्राप्ति के लिए वहन की जाती है। यह शुल्क बाजार में स्वास्थ्य सुविधा की लागत से काफी कम होता है। इसलिए इसे स्वास्थ्य लागत की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस प्रकार स्वास्थ्य शुल्क की शुरूआत स्वास्थ्य सेवाओं के वित्तपोषण के लिए एक वैकल्पिक उपाय के रूप में की गई।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन एवं स्वास्थ्य शुल्क

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत से पहले विभिन्न राज्यों जैसे मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा इत्यादि में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे स्वास्थ्य क्षेत्र सुधारों के अंतर्गत इन स्वास्थ्य शुल्कों पर काफी प्रयोग किए गए और अनेकों राज्यों में इस प्रयोग के तहत

* सहायक अनुसंधान अधिकारी, एपिडेमियोलॉजी विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067। सम्प्रतिः अनुसंधान अधिकारी (प्रतिनियुक्ति आधार पर), अल्प-संख्यक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

यह देखा गया कि क्या वास्तव में ये स्वास्थ्य शुल्क समय की आवश्यकता हैं या नहीं? इन स्वास्थ्य सुधार प्रयोगों के तहत इन शुल्कों के उपयोग एवं उपलब्धता पर क्या प्रभाव पड़ा है। विभिन्न राज्यों में किए गए अध्ययन में यह भी देखा गया है कि यह शुल्क कुल लागत का कितने प्रतिशत प्राप्त कर पाए हैं। आगामी दी गयी तालिका में यह स्पष्ट दिखाया गया हैः

क्रम सं.	*राज्य*	*कुल स्वास्थ्य खर्च (लाख रू. में)*	*कुल स्वास्थ्य शुल्क (लाख रू. में)*	*लागत वसूली का प्रतिशत*
1.	आंध्र प्रदेश	47,898	735	1.53
2.	बिहार	22,130	230	1.03
3.	गुजरात	33,564	438	1.31
4.	हरियाणा	11,957	1,137	9.51
5.	कर्नाटक	42,614	1,180	2.77
6.	केरल	31,226	4,592	15.86
7.	मध्य प्रदेश	36,218	578	1.60
8.	महाराष्ट्र	45,893	2,127	4.63
9.	राजस्थान	43,113	398	0.93
10.	पंजाब	17,693	1,888	10.67
11.	तमिलनाडु	55,984	1,238	2.21
12.	उत्तर प्रदेश	84,308	2,726	3.23

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में वर्ष 2005 के बाद स्वास्थ्य शुल्क को इन राज्यों में सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थाओं जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सामुदयिक केन्द्र एवं जिला चिकित्सालय के स्तर पर लागू कर दिया गया है और इनके रखरखाव के लिए स्वास्थ्य शुल्कों का उपयोग शुल्क एकत्रित करने वाली स्वास्थ्य संस्था द्वारा संस्था के विकास के लिए समितियों के माध्यम से किया जाएगा। मिशन के तहत इन रोगी कल्याण समितियों को सुचारू रूप से कार्य शुरू करने के लिए धनराशि भी उपलब्ध करायी गई है। अतः मिशन के अंतर्गत स्वास्थ्य शुल्क को स्वास्थ्य संस्थाओं के विकास के लिए अनिवार्य मानते हुए विकेन्द्रीकरण को बढ़ाया गया है।

हरियाणा में राज्य प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य खर्च

वर्तमान आंकडों के अनुसार प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से हरियाणा का स्थान देश में गोवा के बाद दूसरे स्थान पर है। 2005-06 के आंकडों के अनुसार शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद वर्तमान कीमतों पर वर्ष 1999-2000 की तुलना में दोगुना हो गया था परंतु दूसरी तरफ यह राज्य घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कम हुआ है। यह नीचे दी गई तालिका में दर्शाया गया हैः

वर्ष	*वर्तमान मूल्यों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (करोड़ रू. में)*	*स्वास्थ्य पर कुल व्यय (करोड़ रू. में)*	*स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति व्यय (करोड़ रू. में)*	*वर्तमान मूल्यों पर प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पाद (करोड़ रू. में)*
1999-2000	44673.25	648.07 (1.45)	144.00	100.00
2000-2001	50350.40	643.62 (1.27)	166.83	109.90
2001-2002	55980.04	753.36 (1.34)	165.09	118.70
2002-2003	61709.65	880.14 (1.43)	186.90	128.60
2003-2004	70180.78	976.98	184.57	143.40
2004-2005	79575.34	1589.18 (1.99)	185.90	159.50
2005-2006	89587.11	1198.42 (1.34)	199.40	176.80

तालिका से स्पष्ट है कि राज्य में स्वास्थ्य पर प्रति खर्च में वृद्धि हुई है जो कि 1999-2000 में रू.144 से बढकर 2005-06 में रू.199.40 हो गयी है।

राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं का उपभोग

नीचे दी गई तालिका में राज्य की स्थापना 1966 से लेकर *वर्ष* 2005-06 तक के आंकडों द्वारा राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं के उपभोग को दिखाया गया है:

हरियाणा में उपचारित रोगी

वर्ष	*अंतरंग*	*बाह्य*	*कुल*
1966	116418	2906348	3022766
1970	152146	3475216	3627362
1975	206833	6975189	7182022
1980	254518	9607909	9862427
1990-91	350070	7958662	8308732
1995-96	346141	7441132	7787273
2000-01	374099	9327164	9701263
2004-05	397817	10470298	10868115
2005-06	432857	11252225	11685082

तालिका में केवल बाह्य एवं अंतरंग रोगियों की संख्या को दर्शाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि राज्य में सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा उपचार किए गए रोगियों की संख्या में काफी वृद्वि हुई है।

हरियाणा में स्वास्थ्य शुल्क

प्रदेश में वर्ष 1999 में यूरोपियन आयोग की तकनीकी एवं वित्तीय सहायता से स्वास्थ्य क्षेत्र सुधारों का प्रारंभ किया गया। इन सुधारों का मुख्य उद्देश्य प्रदेश में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता एवं उपभोग में सुधार करना था। सुधारों के अंतर्गत राज्य में स्वास्थ्य समितियों का निर्माण विभिन्न प्रशासनिक स्तरों जैसे जिला स्तर, ब्लॉक स्तर एवं ग्रामीण स्तर पर किया गया। सुधारों के तहत विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया गया और विभिन्न स्वास्थ्य संस्थाओं को प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकार प्रदान किए गए, ताकि ये स्वास्थ्य समितियां स्वायत्त तरीके से कार्य कर सकें। सुधारों के अन्तर्गत महत्वपूर्ण निर्णय, राज्य में प्रचलित स्वास्थ्य शुल्क का संस्थागत स्तर पर उपयोग करने का अधिकार था। सुधारों से पूर्व ये स्वास्थ्य शुल्क राज्य के सरकारी कोष में जमा करा दिए जाते थे और इन पर संस्था का कोई अधिकार नहीं था। सुधारों के तहत यह निर्णय लिया गया कि इन स्वास्थ्य शुल्कों का उपयोग संस्था के विकास के लिए स्थानीय आधार पर स्वास्थ्य समिति द्वारा निर्धारित नीति के तहत किया जाएगा। नीचे दी गई तालिका में वर्ष 2004-06 के दौरान एकत्रित किए गए कुल स्वास्थ्य शुल्क का ब्यौरा दिया गया हैः

वर्ष 2004-06 के दौरान प्रयोगकर्त्ता शुल्क की राशि का जिलेवार वसूली एवं व्यय

(लाख रू. में)

जिला	*कुल वसूली*	*कुल व्यय*	*शेष राशि*	*व्यय का प्रतिशत*
अंबाला	156.39	108	48.39	69.06
भिवानी	152.69	40.49	112.2	26.52
फरीदाबाद	71.26	34.21	37.05	48.01
फतेहाबाद	76.7	50.07	26.63	65.28
गुडगाँव	10.69	1.71	8.98	16
हिसार	197.06	53.48	143.58	27.14
जीन्द	142.91	113.26	29.65	79.25
झज्जर	27.57	24.25	3.32	87.96
कैथल	88.72	63.97	24.97	72.10
करनाल	147.29	85.1	62.19	57.78
कुरूक्षेत्र	83.21	37.23	45.98	44.74
नारनॉल	2.08	0	2.08	0
पंचकुला	202.47	133.01	69.46	65.69
पानीपत	53.8	0	53.8	0
रेवाड़ी	88.38	46.86	41.52	53.02
रोहतक	59.8	26.81	32.99	44.83

जिला	*कुल वसूली*	*कुल व्यय*	*शेष राशि*	*व्यय का प्रतिशत*
सोनीपत	138.03	88.29	49.74	63.96
सिरसा	18.86	1.07	17.79	5.67
यमुना नगर	121.56	93	28.56	76.51
कुल	**1839.47**	**1000.81**	**838.66**	**54.41**

स्रोतः सेक्टर इनवेस्टमेंट प्रोब्लम ऑफिस, हरियाणा

तालिका द्वारा प्रदेश में विभिन्न जिलों में वर्ष 2004-2006 के दौरान इकट्ठे किए गए एवं खर्च किए गए स्वास्थ्य शुल्क का विवरण प्रदर्शित किया गया है। पंचकुला जिले में सबसे अधिक स्वास्थ्य शुल्क इकट्ठा किया गया है, जबकि खर्च प्रतिशत झज्जर जिले में सबसे अधिक है परंतु यहाँ कुल संग्रह केवल 27.57 लाख रू. है। इस प्रकार, यमुना नगर जिले की स्थिति सबसे अच्छी है जहाँ पर स्वास्थ्य शुल्क संग्रह एवं खर्च दोनों ज्यादा है।

वर्तमान समय में स्वास्थ्य क्षेत्र में काफी सुधार किए जा रहे हैं और इनको स्वास्थ्य क्षेत्र सुधारों की श्रेणी में रखा गया है। विभिन्न राज्यों में इन सुधारों के तहत शुल्क को नीतिगत रूप से मान्यता प्रदान की गई है। हालांकि विभिन्न राज्यों में स्वास्थ्य शुल्कों का प्रभाव अलग-अलग रहा है। कहीं पर इनके प्रभाव से सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के उपभोग में कमी आई है और कहीं पर इनके प्रभावस्वरूप सेवाओं की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है। यदि हम हरियाणा का उदाहरण देखें तो यह पाया गया है कि इन स्वास्थ्य शुल्कों के प्रभावस्वरूप राज्य में सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की कार्यप्रणाली में काफी सुधार हुआ है। स्वास्थ्य शुल्कों के कारण संस्थाओं के पास वित्तपोषण की समस्या का काफी हद तक समाधान हुआ है। संस्थाओं में उपकरणों एवं दवाईयों की सुविधा सुचारू रूप से शुरू हुई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान द्वारा किए गए अनुसंधान से यह पता चला है कि राज्य में स्वास्थ्य समितियां बनने से स्वास्थ्य समस्याओं को स्वायत्तता प्राप्त हुई है और स्वास्थ्य शुल्क के उपयोग से इन संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है। अतः राज्य में स्वास्थ्य शुल्क का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।

संदर्भः

1. हरियाणा स्वास्थ्य सेवाएं, महानिदेशालय स्वास्थ्य सेवाएं, हरियाणा।
2. स्टेलस्टिकल आब्स्ट्रेक्ट हरियाणा, 2005-06।
3. हरियाणा में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण समितियों का एक अध्ययन, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली।
4. डेविड एच पीटर एट एल, बैटर हैल्थ सिस्टम्स फोर इंडियन प्रवरः फाइडिंगज बर्ड बैंक, वाशिंगटन, 2002 पेज 257।

स्वाइन फ्लूः लक्षण और उपचार

डा.इन्दु ग्रेवाल*

इनफ्लुएंजा एक विषाणु जनित रोग है। यह विषाणु तीन प्रकार का होता है - 'ए', बी, और सी। इन तीनों प्रकार के विषाणुओं में इनफ्लुएंजा ' ए ' सबसे अधिक संक्रामक होता है। यह विषाणु मनुष्यों के अलावा दूसरी कई प्रजातियों में भी संक्रमण करता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इनफ्लुएंजा 'ए' विषाणु में बहुत जल्दी प्रतिजनिक(एंटीजैनिक) बदलाव आता है जिसकी वजह से प्रतिरक्षित टीका भी प्रभावित नही होता।

इनफ्लुएंजा विषाणु की ऊपरी सतह पर दो प्रकार के प्रतिजनक (एंटीजन) होते हैं जिन्हें हीमएग्लुटीनिन (एच) और न्यूरामिनिडेज (एन) कहते हैं। हीमएग्लुटीनिन (एच) 1 से 16 प्रकार का होता है जबकि न्यूरामिनिडेज (एन) 1 से 9 प्रकार का होता है। ये दोनों (एच और एन) प्रतिजनक एक दूसरे से मिलकर विभिन्न प्रकार के जोड़े बनाते हैं जैसे एच1,एन1,एच2,एन2,एच3 एन2 एच5 एन1 आदि। हर प्रकार के जोड़े से अलग-अलग प्रकार का इनफ्लुएंजा होता है।

सन् 1918 में पहली बार ए (एच1,एन1) के कारण एक महामारी हुई जिसे " स्पेनिश फ्लू " के नाम से जाना जाता है। इस महामारी से विश्व में 5 करोड़ लोगों की मृत्यु हुई। इसके बाद सन् 1957 में ए (एच2एन2) के कारण दूसरी महामारी फैली। इस इनफ्लुएंजा को 'एशियन फ्लू' कहते हैं जिसके दौरान 10 से 40 लाख लोगों की मौत हुई। लगभग 11 वर्षों बाद सन् 1968 में भी इनफ्लुएंजा महामारी हुई जिसे 'हाँगकाँग फ्लू' कहते हैं। इसमें भी 10 से 40 लाख लोगों की मृत्यु हुई। स्पेनिश फ्लू के मुकाबले बाद में फैली एशियन फ्लू और हाँगकाँग फ्लू से कम मौतें हुईं। इसका कारण था कि पहली महामारी के अनुभव से वैज्ञानिक तकनीक बेहतर हुई। बचाव व रोकथाम के उपाय ठीक प्रकार से अपनाए गए। 18 मार्च 2009 में मैक्सिको मे पहली बार नई तरह की फ्लू जैसी बीमारी रिपोर्ट की गई। उसके बाद यह बीमारी अमेरिका तथा कनाड़ा में भी फैल गई। 22 मई 2009 में जब विश्व में 80,000 मरीज थे तब भारत में पहला केस दर्ज हुआ। लगभग 2 महीनों मे ही यह बीमारी तेजी से कई महाद्वीपों के देशों मे फैल गई। यह महामारी भी ए(एच1एन1) विषाणु के कारण हुई है और 'स्वाइन फ्लू' के नाम से जानी जा रही है।

स्वाइन फ्लू बीमारी आमतौर से सुअरों में पाई जाती है। 'स्वाइन फ्लू' के विषाणु में एंटीजनिक बदलाव आने से एक नए स्वाइन फ्लू इनफ्लुएंजा 'नोबल' विषाणु का जन्म हुआ, और यह बहुत जल्दी मनुष्यों में फैल गया। मनुष्यों में इस विषाणु की प्रतिरोधी क्षमता नहीं है इसलिए बहुत कम समय में इसने एक महामारी का रुप ले लिया है। मनुष्य में इस बीमारी को इनफ्लुएंजा ए (एच1एन1) के नाम से जाना जाता है।

* छात्रा, अंतिम वर्ष, एम.डी (सामुदायिक स्वास्थ्य प्रशासन) राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

यह बीमारी एक ए(एच1एन1) संक्रमित व्यक्ति के छींकने व खांसने से दूसरे व्यक्तियों में फैलती है। संक्रमण खांसने या छींकने से निकलने वाले ड्रॉपलेट (छोटे-छोटे छींटे) से होता हैं। यदि यही ड्रापलेट किसी वस्तु जैसे मेज, कुर्सी, हाथ आदि पर जमा हो जाता है तो उसके संपर्क में आने से भी स्वाईन फ्लू का संक्रमण फैल सकता है।

स्वाईन फ्लू के लक्षण

इसके लक्षण बुखार, सर्दी, सिर दर्द, खांसी, जुकाम, गले में खराश, जी मिचलाना, उल्टी तथा माँसपेशियों में दर्द आदि हैं जो किसी भी अन्य फ्लू जैसे होते हैं।

उम्र के अनुसार कुछ लक्षण भिन्न भी हो सकते हैं, जैसे बच्चों और बुजुर्गों में उल्टी और दस्त इसके लक्षण हो सकते हैं। अन्य फ्लू की भाँति स्वाईन फ्लू में भी साइनोसाइटिस, निमोनिया, दमा, दिल, मांसपेशियों या दिमाग से संबंधित बीमारियां भी हो सकती है। .यदि स्वाईन फ्लू के साथ-साथ अन्य संक्रमण भी हो जाए तो स्थिति बिगड़ जाती है।

इन लक्षणों वाला व्यक्ति एक सप्ताह पहले यदि किसी स्वाईन फ्लू के रोगी के संपर्क में रहा हो या वह व्यक्ति किसी ऐसे क्षेत्र या विदेश गया हो, या रहता हो जहाँ पर एक या एक से अधिक स्वाईन फ्लू ग्रस्त रोगी हों या उनके होने की सम्भावना हो। इसके अलावा वह व्यक्ति स्वाईन फ्लू पीड़ित सुअर के आसपास रहता हो या काम करता हो तो स्वाईन फ्लू होने की सम्भावना बढ़ जाती हैं।

स्वाईन फ्लू का संक्रामक समय (इनकुबेशन अवधि)

स्वाईन फ्लू के लक्षण आने से एक दिन पहले और सात दिन बाद तक स्वाईन फ्लू का मरीज स्वाईन फ्लू के विषाणु छींकते व खांसते समय शरीर से निकालता रहता हैं। बच्चो में यही विषाणु 14 दिन तक खांसी व छींक से बाहर आते हैं।

स्वाईन फ्लू की कारक स्थितियाँ

ऐसा व्यक्ति जिसे हाल ही में बुखार के साथ जुकाम व गले में खराश हुई हो और एक सप्ताह के अन्दर किसी निश्चित स्वाईन फ्लू के रोगी के नजदीकी संपर्क में रहा हो।

या

एक सप्ताह के अंदर किसी ऐसे क्षेत्र में या विदेश में गया हो जहां पर एक या अधिक स्वाईन फ्लू से पीड़ित रोगी हों

या

ऐसे क्षेत्र में रहता हो जहां पर एक या अधिक स्वाईन फ्लू से पीड़ित रोगी हों।

हाल ही में स्वाईन फ्लू के मरीज देश के हर राज्य में मिल रहें हैं इसलिए फ्लू के लक्षणों वाले हर व्यक्ति को संदेहास्पद समझा जा सकता है।

स्वाईन फ्लू कैसे फैलता है?

1. स्वाईन फ्लू से ग्रस्त व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति को

- स्वाईन फ्लू से ग्रस्त व्यक्ति के छींकने से

- स्वाईन फ्लू से ग्रस्त व्यक्ति के द्वारा छुये हुए या इस्तेमाल किये गए सामान या सतह को छूकर हाथों को मुंह या नाक पर लगाने से।

2. भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर जहां स्वाईन फ्लू ग्रस्त व्यक्ति हो;

यह ध्यान रहे कि स्वाईन फ्लू किसी सुअर के सम्पर्क में आने से या उसके मांस खाने से नहीं फैलता है।

स्वाईन फ्लू का उपचार

भारत सरकार के दिशा-निर्देश के अनुसार स्वाईन फ्लू मरीजों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है।

श्रेणी ' ए '

यदि हल्का बुखार, खांसी, गले में खराश, बदन-दर्द, दस्त, उल्टी जैसे लक्षण हों तो एच1 एन1 का टेस्ट करवाने की जरुरत नहीं हैं।

उपचार

केवल लक्षणों का इलाज करना चाहिए और 24 या 48 घंटे बाद मरीज की डाक्टर द्वारा पुन: जाँच की जानी चाहिए। इन लक्षणों के व्यक्ति को दूसरे लोगों से अलग रखा जाना चाहिए।

श्रेणी 'बी '

यदि इस व्यक्ति को तेज बुखार, खाँसी, गले में खराश बदन-दर्द, दस्त, उल्टी जैसे लक्षण है तो एच 1 एन 1 टेस्ट की जरुरत नहीं हैं।

उपचार

लक्षण के अनुसार दवा दी जानी चाहिए। यदि 5 वर्ष से कम आयु हो या 65 वर्ष से अधिक आयु हो, गर्भवती महिला, या किसी क्रोनिक (लम्बी) बीमारी से ग्रस्त हों तो इन सभी को टेमीफ्लू दवा दी जाती हैं।

श्रेणी ' सी '

यदि किसी व्यक्ति को तेज बुखार, खांसी, गले में खराश, बदन दर्द, दस्त, उल्टी के अलावा निम्न लक्षण में एक या एक से अधिक लक्षण हों-

- सांस फूलना
- रक्तचाप में गिरावट
- नाखूनों का नीला पड़ना
- बच्चों में चिड़चिड़ाहट

इसी अवस्था में एच1 एन1 का टेस्ट करवाने की आवश्यकता है तथा इस व्यक्ति को तुरन्त अस्पताल में भर्ती करके टेमीफ्लू दवा दी जानी चाहिए।

इलाज के लिए टेमीफ्लू की खुराक सुबह-शाम पाँच दिन तक दी जाती हैं।

टेमीफ्लू (ओस्लाटामिविर) की खुराक की मात्रा

शरीर का वजन	मात्रा
< 15 किलो	30 मि.ग्रा.
15 किलो से 23 किलो	45 मि. ग्रा.
23 किलो से 40 किलो	60 मि. ग्रा.
> 40 किलो	75 मि. ग्रा.

निषेध उपचार (कन्ट्राइंडिकेशन)

इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति को ऐस्प्रीन या ऐसिटाईल सेलिसिलेट युक्त दवा बिल्कुल नहीं देनी चाहिए।

स्वाईन फ्लू से बचाव के उपाय

(क) आम आदमी के लिए बचाव के तरीके

1. स्वाईन फ्लू से ग्रस्त व्यक्ति से उचित दूरी बनाकर रखें।
2. संपर्क में आने पर हाथों को साबुन से धोएं।
3. खाँसते व छींकते समय नाक व मुँह को ढ़ककर रखें।
4. हाथों को मुँह या चेहरे पर न लगाएँ।
5. संदेहास्पद स्वाईन फ्लू के लक्षणों से पीड़ित व्यक्ति को घर पर ही रखें।
6. अधिक मात्रा में तरल पदार्थ व पौष्टिक आहार लें।
7. ज्यादा भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर न जाएँ।

(ख) स्वास्थ्य कर्मियों के लिए बचाव के तरीके

स्वास्थ्य कर्मियों को ऊपर दिये गए उपायों के अलावा सामान्य सावधानी का इस्तेमाल करना चाहिए, जैसे कि मास्क, कोट, जूते, दस्तानें, चश्मा पहनकर रखे। हर रोगी को छूने से

पहले और बाद में साबुन से अपना हाथ धोएं। स्वयं अपने लक्षणों पर निगरानी रखें। स्वाईन फ्लू वार्ड में कार्यरत कर्मचारी या डाक्टर को कीमोप्रोफाइलेक्सिस लेना चाहिए।

वैक्सीन

फिलहाल कोई सफल टीका न होने के कारण बचाव ही इलाज है। भारत में स्वाईन फ्लू के विरुद्ध वैक्सीन मार्च-अप्रैल 2010 में आ जाने की संभावना हैं। चार भारतीय दवा-कंपनियाँ इस वैक्सीन को तैयार करने में व्यस्त हैं।

संदर्भः

1. वेबसाइट: www.mohfw-h1n1.nic.in

मधुमेह और हमारा स्वास्थ्य

मनीषा*

मधुमेह शनैः शनैः पनपने वाला दीर्घकालीन रोग है जिसका मूल कारण है - इन्सुलिन का अभाव। मानव शरीर में इन्सुलिन अंतः रस पेन्क्रियाज नामक अंग से वीटा कोशिकाओं द्वारा स्वतः आवश्यकतानुसार पैदा होता रहता है। स्वस्थ व्यक्ति में यह रस भोजन से प्राप्त शर्करा की मात्रा के अनुपात में स्वतः नियन्त्रण प्रणाली द्वारा उत्पन्न होता है। परन्तु मधुमेह के रोगी में यह प्राकृतिक संतुलन कायम नहीं रहता जिसके कारण इन्सुलिन कम या बिल्कुल पैदा नहीं होता। अतः किसी कारण शरीर में जब इन्सुलिन की सापेक्ष कमी हो जाती है तब मधुमेह सम्बन्धी लक्षण उभरने लगते हैं। इन्सुलिन के अभाव में श्वेतसार (कार्बोहाइड्रेट), प्रोटीन और वसा का चयापचय (मैटाबोलिज्म) बिगड़ जाता है जिसके फलस्वरूप शारीरिक अंग शर्करा का उपभोग नहीं कर पाते, इसलिए रक्त में शर्करा बढ़ जाती हैं। रक्त शर्करा जब सामान्य सीमाओं को पार कर जाती है, मूत्र मार्ग से बह निकलती है, इसीलिए मूत्र में मिठास आ जाती है। इसी कारण से इस बीमारी को 'मधुमेह' का नाम दिया गया है।

इस बीमारी का अंग्रेजी नाम 'डायबिटीज मैलाइटस' है 'डायबिटीज' यूनानी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'प्रवाहित' होना। सम्भवतः प्राचीन यूनानी चिकित्सा में डायबिटीज नाम उन सभी बीमारियों को दिया गया होगा जो मूत्र मार्ग से संबंधित मानी जाती हैं। संस्कृत भाषा में 'डायबिटीज' का समानार्थक शब्द है 'प्रमेह' प्रमेह का शाब्दिक अर्थ है 'प्रवाहित होना' 'द्वौ प्रमेहो भवतः' - सुश्रुत संहिता में प्रमेह शब्द का प्रयोग मधुमेह शब्द के लिए किया गया है। उपर्युक्त श्लोक में मधुमेह के दो प्रकार बताए हैं।

आज सारे विश्व में भारत के शहरी समाज में मधुमेह से ग्रसितों की संख्या सबसे अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व में 18 करोड़ से ज्यादा लोग मधुमेह से ग्रसित हैं और यह संख्या सन् 2030 तक दुगुनी से भी ज्यादा पहुँच सकती है। भारत में लगभग 4 करोङ 20 लाख मधुमेह के रोगी हैं और ऐसा अनुमान है कि यह संख्या सन् 2030 में दुगुनी होकर 8 करोड़ तक पहुँच जाएगी।

मधुमेह के प्रकार

मधुमेह रोग दो प्रकार का होता हैः

(1) इंसुलिन निर्भर मधुमेह (इंसुलिन डिपेंडेंट डायबिटीज) एवं

(2) गैर इंसुलिन निर्भर मधुमेह

* सहायक अनुसंधान अधिकारी, सामुदायिक स्वास्थ्य प्रशासन विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

इंसुलिन निर्भर मधुमेह

यह एक ऐसा रोग है जिसके कारण शरीर में इंसुलिन हारमोन बिल्कुल नहीं होता है। इस प्रकार के अधिकांश रोगियों को जन्म के कुछ सप्ताह बाद से ही इंसुलिन सुई द्वारा देना प्रारम्भ करना पड़ता है। यह इलाज उन्हें आजीवन करना पड़ता है। बचपन में शरीर का विकास आवश्यक है, अतः दवा की मात्रा शारीरिक विकास के अनुसार बढ़ानी पड़ती है। इन रोगियों के भोजन में प्रोटीन की मात्रा गैर-इंसुलिन निर्भर मधुमेह के रोगियों से अधिक रखनी पड़ती है। शरीर में शुगर की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए इंसुलिन की जरुरत पड़ती है अन्यथा मरीज बेहोश हो जाता है और कोमा में चला जाता है। यह स्थिति 'डायबिटिक कोमा' कहलाती है।

गैर इंसुलिन निर्भर मधुमेह

इसे नॉन-इंसुलिन डिपेंडेंट डायबिटीज या एन.आई. डी.डी. एम. कहते हैं। यह बीमारी इंसुलिन निर्भर मधुमेह की तुलना में कम गंभीर होती है और अधिकांश वयस्क लोगों में पाई जाती है। अधिकांशतः मधुमेह रोगी इसी से ग्रसित होते हैं इस रोग की स्थिति में शरीर में इंसुलिन हारमोन तो होता है परन्तु या तो वह कम मात्रा में या आवश्यकता पड़ने पर उसकी मात्रा अधिक नहीं मिलती। शरीर में विद्यमान इंसुलिन इतनी मात्रा में तो होती है कि रोगी को बेहोशी में नहीं जाने देती और जीवन रक्षा के लिए बाहर से इंसुलिन लेने की जरुरत नहीं पड़ती। इसे नॉन-इंसुलिन डिपेंडेंट डायबिटीज या एन.आई. डी.डी.एम. कहते हैं।

कारण

मधुमेह सम्बन्धी मूल कारणों का ज्ञान अभी तक अधूरा है। वर्तमान युग में हुए अनुसंधानों के फलस्वरुप अनेक कारणों का पता चला है जो इस प्रकार हैं :

आनुवांशिक कारण

मधुमेह के प्रमुख कारणों में जन्मजात विकारों का अत्यन्त महत्वपूर्ण हाथ है। यदि माता-पिता दोनों मधुमेह के रोगी हैं तो बच्चों में इस रोग के होने की सम्भावना अधिक होती है। जन्मजात विकारों द्वारा मधुमेह के लक्षण किसी भी उम्र में दिखाई पड़ सकते हैं। कई व्यक्तियों में यह बीमारी बचपन से ही शुरु हो जाती है और कुछ में उम्र बढ़ने के साथ-साथ। चरक ने जन्मजात मधुमेह को लाइलाज बताया है और लिखा हैः

'जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा
न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्।
ये चारि केचित् कुलज विकारा
भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान्।।'

अर्थात् माता-पिता के बीज दोषों के कारण उत्पन्न हुआ मधुमेही असाध्य होता है। इसी प्रकार जिन रोगियों के परिवार में मधुमेह का इतिहास मिलता है उन्हें भी असाध्य माना जाता है।

आहार-विहार सम्बन्धी अनियमितताएं

अनियमितताएं मधुमेह का मुख्य कारण हैं। साधारणतः बढती उम्र में जब शारीरिक शिथिलता बढने लगती है व्यक्ति आहार एवं व्यायाम सम्बन्धी अनियमितताओं से बंधता जाता है, जिस कारण से मधुमेह आदि बीमारियाँ उभरने लगती हैं। बचपन या युवावस्था में इन अनियमितताओं को गौण माना जाता है परन्तु वृद्धावस्था में शारीरिक परिश्रम कम होने से भोजन में इंसुलिन की आवश्यकता बढ जाती है जिसके फलस्वरुप क्लोम ग्रंथि की क्रियाशीलता प्रभावित होती है। जब यह अनियमितताएँ बहुत समय तक लगातार चलती हैं तो क्लोम ग्रंथि की क्षमता घट जाती है जिसकी वजह से इंसुलिन का उत्पादन रुक जाता है परिणामतः रक्त शर्करा बढने लगती है जो अन्ततोगत्वा मधुमेह को जन्म देती है।

मोटापा

मोटापा अव्यवस्थित दिनचर्या, आलसी जीवन एवं चिन्ता भी इस रोग की उत्पत्ति में सहायक है। इस अवस्था में हमारे शरीर का वजन औसतन वजन से 30 से 40 प्रतिशत बढ़ जाता है तो इंसुलिन की कार्यक्षमता 30 से 35 प्रतिशत कम हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों में मधुमेह रोग की संभावनाएं बढ जाती हैं।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त **उच्च जीवन स्तर, अतिरक्तचाप, मदिरापान का अधिक सेवन आदि भी मधुमेह रोग की उत्पत्ति में सहायक हैं।**

मधुमेह रोग के लक्षण

इस रोग के लक्षण दो कारणों से उत्पन्न होते हैः

1. रक्त शर्करा स्तर बढने से उत्पन्न
2. मधुमेह रोग द्वारा अन्य अंगों पर दुष्प्रभाव के परिणामस्वरुप उत्पन्न।

(1) रक्त शर्करा स्तर बढने से उत्पन्न

1. बार-बार भूख लगना
2. बार-बार पेशाब आना
3. बार-बार प्यास लगना
4. वजन तेजी से घटना
5. तीव्र कमजोरी और थकान
6. उच्च रक्त - शर्कराजनित बेहोशी

(2) मधुमेह रोग द्वारा अन्य अंगों पर दुष्प्रभाव के परिणामस्वरुप उत्पन्न

1. नजर में फर्क आना
2. बार-बार मूत्र स्थान में संक्रामक रोग होना
3. हाथ-पैर में सुन्न महसूस होना और दर्द रहना।

4. नपुंसकता, काम इच्छा का कम होना।
5. घावों तथा अन्य संक्रामक रोगों का देर से ठीक होना।
6. पैरों में घाव या सड़न
7. कम उम्र में हृदय रोग के लक्षण

मधुमेह की जाँच

मधुमेह रोग की जाँच कई प्रकार से की जा सकती है जैसे-

(1) **मूत्र परीक्षण**

ग्लूकोटेस्ट से या परीक्षण पट्टी द्वारा जाँच

यह परीक्षण मूत्र में शक्कर निर्धारण का एक विश्वसनीय, शीध्र तथा इस्तेमाल करने में आसान परीक्षण है। इसके एक साफ पात्र में मूत्र का नमूना लेकर परीक्षण पट्टी को थोड़े समय (1 सेकण्ड) के लिए मूत्र में डुबोया जाता है फिर परीक्षण पट्टी को बाहर निकाल कर एक मिनट बाद परीक्षण पट्टी पर उत्पन्न हुए रंग की ट्यूब पर लगे रंगीन लेवल से तुलना करके मधुमेह की जाँच की जाती है। प्राचीन समय में इस परीक्षण का अधिक प्रचलन था।

(2) **खून जाँच**

यह परीक्षण दो तरह से किया जाता हैः

(क) प्रातःकाल भोजन से पूर्व या खाली पेट

(ख) भोजन के दो घण्टे पश्चात

खाली पेट और भोजन के पश्चात रक्त परीक्षण करने से रक्त शर्करा एवं रोग का सही रुप से पता चल सकता है। इस परीक्षण में प्रातःकाल खाली पेट ही रक्त लिया जाता है। जिससे खाली पेट रक्त शर्करा की मात्रा का बोध हो जाता है। इसके पश्चात रोगी को पानी के साथ 100 ग्राम ग्लूकोज पिलाया जाता है अथवा भरपेट भोजन दिया जाता है। इसके दो घण्टे बाद पुनः रक्त निकालकर रक्त शर्करा की जाँच की जाती है। इनसे सामान्य परिणाम इस प्रकार हैं-

i) खाली पेट निकाले गए रक्त में शर्करा की मात्रा 80 और 120 मिलीग्राम प्रति एक सौ मिलीलिटर रक्त होना चाहिए इससे अधिक मात्रा होने पर मधुमेह की बीमारी मानी जाती है।

ii) भोजन तथा ग्लूकोज के दो घण्टे पश्चात निकाले रक्त में शर्करा की मात्रा 160 मिलीग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए। इससे अधिक मात्रा होने पर मधुमेह की बीमारी मानी जाती है।

मधुमेह की ABC(ए.एल.सी, रक्त चाप तथा कोलेस्ट्रोल)

Hb Alc, 7% रक्त दाब तथा कोलेस्ट्रोल को नियंत्रित करके अन्य बीमारियों जैसे हार्ट अटैक तथा दौरों के जोखिम को कम किया जा सकता है।

- एआईसी टेस्ट (AIC Test) - एचबी एआईसी परीक्षण मधुमेह का निदान (diagnose) करने के लिए नहीं बल्कि मधुमेह रोग को हमने पिछले 2-3 महीनों में कितना नियंत्रित किया है, को बताता है यह पिछले तीन माह में हमारे शरीर में औसतन रक्त ग्लूकोज को मापता है। इसे वर्ष में दो बार करना चाहिए। मधुमेह रोगियों का एआईसी (AIC) का लक्षण (सामान्य मूल्य) 7 से कम है। यदि मूल्य 7 से अधिक आता है तो मधुमेह रोगी को अपने डाक्टर की सलाह से अपने इलाज में बदलाव करना चाहिए।
- प्रतिमाह रक्त दाब की जाँच करानी चाहिए। मधुमेह रोगियों का रक्त दाब का लक्ष्य (सामान्य मूल्य) 130/80 से कम है। इससे अधिक दाब पर इसे नियंत्रित करना चाहिए।
- एक वर्ष में कम से कम एक बार एलडीएल (LDL) अर्थात् कोलेस्ट्रोल की जाँच (Check) करानी चाहिए। एलडीएल (LDL) कोलेस्ट्रोल का लक्ष्य 100 से कम है। इससे अधिक होने पर इसे नियंत्रित करना चाहिए। मधुमेह रोग पर प्रभावी नियन्त्रण पाने के लिए रोगी को निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- मधुमेह रोगी को नियमित समय पर संतुलित आहार लेना चाहिए। उसे पूरे दिन के लिए तय किए गए भोजन को थोड़ा-थोड़ा कई बार में खाना चाहिए। क्योंकि एक बार में शर्करा को पचा पाने की सामर्थ्य मधुमेह रोगी में नहीं होती। मधुमेह रोगी को इन तीन चीजों का सेवन अल्पमात्रा में या बिल्कुल नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके सेवन से रक्त में शर्करा का स्तर बढने लगाता है

  (क) चीनी एवं चीनी से बनी चीजें

  (ख) घी और तेल

  (ग) जमीन के अन्दर होने वाली सब्जी जैसे - शकरकन्दी, आलू, चुकन्दर, गाजर आदि का सेवन अल्पमात्रा में करें।

मधुमेह रोगी को रेशे वाली चीजों (हरी सब्जियों लौकी, तोरई, खीरा, पपीता, संतरा, तरबूज, अमरुद इत्यादि) का सेवन अधिक करना चाहिए। यह (रेशा) अतिरिक्त शर्करा वसा, गन्दे विषैले पदार्थ अपने अन्दर सोख कर मल के रुप में शरीर से बाहर करता है। रेशा स्वतः ऊर्जावान नहीं होता अतः इसका अधिक मात्रा में सेवन मधुमेह रोगी का पेट भी भरता है और हानि भी नहीं पहुँचाता। भोजन में रेशा अधिक होने से शर्करा के अणु रक्त वाहनियों द्वारा धीरे-धीरे शोषित होते हैं। फलस्वरुप रक्त शर्करा का स्तर धीरे-धीरे बढता है।

रोकथाम

मधुमेह रोगी की रक्त में शर्करा स्तर को कम करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः

- नियमित व्यायाम एवं व्यवस्थित दिनचर्या का पालन करना चाहिए। मधुमेह रोगी को मधुमेह रोग पर नियन्त्रण हेतु उत्पन्न जटिलताओं से बचाव के लिए सबसे प्रमुख उपाय व्यायाम है। ऐरोबिक व्यायाम के साथ-साथ हल्के वजन उठाने वाले व्यायाम तथा रेसिस्टेंस (Resistance) प्रशिक्षण भी मधुमेह में लाभप्रद माने जाने लगे हैं। हाल ही में इंटरनेशनल जर्नल डायबिटीज केयर, मार्च 2008 में प्रकाशित तीन माह चले अध्ययन, जिसे फॉरटिस, एम्स तथा मौलाना आजाद मेडिकल कालेज, दिल्ली के डाक्टरों के समूह द्वारा 24 वर्ष से 50 वर्ष के 30 मधुमेह रोगियों पर किया गया था, में पाया गया कि मधुमेह रोगियों को हल्के वजन प्रशिक्षण से बहुत लाभ मिलता है जिससे उनका फास्टिंग ग्लूकोज स्तर 26.5 प्रतिशत तक गिर गया था। जिनके परिवार में मधुमेह का इतिहास मिलता है अर्थात् जिन्हें वंशानुगत कारणों से मधुमेह है उन्हें 35 मिनट के ऐरोबिक व्यायाम के साथ-साथ रेसिस्टेंस (Resistance) प्रशिक्षण भी करना चाहिए।
- बच्चों और वयस्कों में शारीरिक वजन आदर्श सीमा में होना चाहिए अर्थात् मोटापे से दूर रहना चाहिए।
- मधुमेह रोगी को मधुमेह रोग के कारण, प्रकार, लक्षण, जटिलताओं की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। जटिलताओं के उत्पन्न होने पर प्रारम्भिक अवस्था में डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए।
- अपने रक्त ग्लूकोज, रक्तचाप, कोलेस्ट्रोल तथा हाइग्लीसराइड को सदा नियंत्रण में रखना चाहिए।
- मधुमेह रोगी को वर्ष में एक बार आँखों, गुर्दों, दिल एवं पैरों की जाँच करा लेनी चाहिए।

उपरोक्त सभी उपाय भारत में मधुमेह पर प्रभावी नियंत्रण पाने के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि मधुमेह के लिए अभी तक कोई भी ऐसी 'रामबाण औषधि' नहीं बनी है जो इसे समूल नष्ट कर दे। इसलिए मधुमेह के लिए यह कहावत लागू हो सकती है 'एक बार बीमारी तो हमेशा के लिए बीमारी'। परन्तु इसके बावजूद रोगी उपरोक्त सभी बातों का विशेष ध्यान रखते हुए सामान्य स्वस्थ्य एवं खुशहाल जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

मधुमेह रोग की गंभीरता के बावजूद सरकार की ओर से वर्तमान में इसके प्रबन्धन के लिए पूरे देश में प्रारम्भिक स्तर पर भी कोई कार्यक्रम अथवा नीति नहीं चलाई जा रही हैं। सरकार को इस बीमारी की गंभीरता पर विचार करना चाहिए तथा सर्वप्रथम प्राथमिकता दी जाने वाली बीमारियों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए। सरकार की ओर से सभी उम्र के लोगों के लिए एक प्रभावी तथा उचित उपचार कार्यक्रम को नियोजित किए जाने की सख्त आवश्यकता है।

संदर्भः

1. डॉ. अशोक झिंगन मधुमेह और स्वस्थ जीवन, ग्रंथ अकादमी, 1986 नई दिल्ली।
2. डॉ. नीलम मकोल, श्रीमती मनीषा, डायबिटीज एन एमरजिंग हैल्थ प्राब्लम इन इण्डिया, हेल्थ एक्सन, सितम्बर 2008।
3. टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 10, 2008।
4. डॉ. साधना अवस्थी, मधुमेह बीमारीः एक परिचय, धारणा, अंक -14 मार्च 2009।

मातृ शिशु स्वास्थ्य और प्रजनन स्वास्थ्य : महत्वपूर्ण तथ्य

स्वाति धमीजा*

भारत में हर वर्ष हजारों बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन मनाने से पहले ही ऐसे कारणों से मर जाते हैं जिनसे उन्हें बचाया जा सकता था। इनमें से बहुत-सी मौतें पाँच कारणों से होती हैं: निमोनिया, दस्त, खसरा, मलेरिया और कुपोषण। इन सबके बावजूद बच्चे कमजोरी के साथ जीते हैं और अपनी क्षमता का पूर्ण विकास नहीं कर पाते। इन पाँच कारणों से बचपन में मौत से बच्चों को बचाने और इनका इलाज करने की जानकारी और साधन दोनों मौजूद हैं। यदि हर व्यक्ति कुछ महत्वपूर्ण स्वास्थ्य संबंधित संदेशों को अपना लें तो बच्चों को मौत और बीमारियों से सुरक्षित किया जा सकता है।

मातृ शिशु स्वास्थ्य और प्रजनन स्वास्थ्य की दृष्टि से यह आवश्यक है कि देश के हर छोटे से छोटे समुदाय के लोग, स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं, मीडिया, सरकारी अधिकारियों, गैर सरकारी संगठनों, शिक्षकों, रोजगार देने वालों, मजदूर संघों, महिला समूहों, सामुदायिक संगठनों आदि का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे सब स्वास्थ्य संदेशों को खुद भी जाने तथा जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाकर सभी महिलाओं और बच्चों की अच्छी सेहत और बेहतर जिंदगी देने का अच्छा कार्य करें और उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें। निम्नलिखित जानकारियों के आधार पर हम मातृ शिशु स्वास्थ्य के प्रति जागरुक रह सकते हैं :

1. महिलाओं और बच्चों दोनों के स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार किया जा सकता है अगर बच्चों के जन्म के बीच में कम से कम दो वर्ष का अंतर रखा जाए, 18 वर्ष की आयु से पहले और 35 वर्ष की आयु के बाद गर्भधारण न किया जाए और महिला पूरे जीवन में एक या दो बच्चों को जन्म दें।

2. सभी गर्भवती महिलाओं को देखभाल और सलाह के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्ता के पास जाना चाहिए। हर प्रसव प्रशिक्षित प्रसव सहायक की उपस्थिति में होना चाहिए। सभी गर्भवती महिलाओं और उनके परिवारों का गर्भावस्था के दौरान होने वाली परेशानियों की चेतावनी संकेत समझने चाहिए और इस बात की पहले से तैयारी रखनी चाहिए कि समस्या होने पर तुरन्त प्रशिक्षित स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता की मदद ली जा सके।

3. जीवन के पहले छह महीने तक बच्चों के खाने-पीने की सारी जरूरत सिर्फ माँ के दूध से पूरी हो जाती है। छह महीने की आयु के बाद बच्चों को माँ के दूध के साथ कुछ अन्य आहार भी देना चाहिए।

4. गर्भावस्था के दौरान माता को और जन्म के बाद पहले दो वर्ष में बच्चे को सही पौष्टिक भोजन न मिलने से बच्चे का मानसिक और शारीरिक विकास जीवन भर के लिए धीमा हो सकता है। जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक हर महीने बच्चे का वजन लिया जाना

* कम्प्यूटर सहायक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

चाहिए। अगर दो महीने तक बच्चे का वजन न बढ़े तो समझना चाहिए कि उसका सामान्य विकास नहीं हो रहा है।

5. हर बच्चे को जीवन के पहले वर्ष के दौरान कई टीके (जैसे-बी.सी.जी., डी.पी.टी., खसरा तथा पोलियो) लगवाने जरूरी होते हैं ताकि उसे उन बीमारियों से बचाया जा सके जो उसके विकास में रुकावट डालती हैं, उसे अक्षम बनाती हैं या उसकी मृत्यु का कारण बनती हैं। गर्भावस्था के दौरान हर महिला को टिटनेस से बचाव के लिए 2 टीके लगवाना जरूरी है। अगर महिला ने यह टीका पहले लगवा लिया हो, तब भी स्वास्थ्य कार्यकर्ता से सलाह लेना जरूरी है।

6. बच्चे को दस्त लगने पर सही मात्रा में तरल पदार्थ यथा : माँ का दूध, फलों का रस या ओआरएस का घोल पिलाना जरूरी है। अगर दस्त में खून आए या बार-बार पतले दस्त हों तो बच्चे का जीवन खतरे में हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसे इलाज के लिए तुरंत स्वास्थ्य केंद्र ले जाना चाहिए।

7. खाँसी और जुकाम होने पर अधिकतर बच्चे अपने आप ठीक हो जाते हैं। लेकिन अगर खाँसी होने पर बच्चा बहुत जल्दी-जल्दी साँस ले या उसे साँस लेने में मुश्किल हो तो ये संक्रमण के लक्षण हैं। अतः बच्चे को इलाज के लिए तुरन्त स्वास्थ्य केन्द्र ले जाना चाहिए।

8. सफाई की आदतें बहुत सी बीमारियों से बचा सकती हैं, जैसे कि - स्वच्छ शौचालयों या पाखानों का इस्तेमाल करना, शौच जाने के बाद और भोजन ग्रहण करने से पहले साबुन और पानी या राख से अच्छी तरह हाथ धोना, सुरक्षित जगह से लिया गया पानी इस्तेमाल करना तथा भोजन में स्वच्छता का ध्यान रखना।

9. मच्छर के काटने से फैलने वाला मलेरिया बुखार जानलेवा हो सकता है। जिन इलाकों में मलेरिया का जोर है मच्छरदानी के भीतर सोना चाहिए, बच्चे/गर्भवती महिला को बुखार होने पर प्रशिक्षित स्वास्थ्य कार्यकर्ता से जाँच करानी चाहिए और स्वास्थ्य कार्यकर्ता की बताई हुई दवाई लेनी चाहिए।

10. बच्चों को बहुत सी गंभीर दुर्घटनाओं से बचाने के लिए माता-पिता को बच्चों, खासकर छोटे बच्चों पर नजर रखनी चाहिए और उनके आसपास का माहौल सुरक्षित रखना चाहिए।

11. प्राकृतिक विपदा की स्थिति में बच्चों के लिए जरूरी सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का प्रयोग करें। उन्हें खसरे से बचाव का टीका लगाने और विटामिन 'ए' जैसे पोषक तत्वों की पूरक खुराक देना जरूरी है। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए सबसे अच्छा यही होता है कि उनकी देखभाल उनके माता-पिता या दूसरे निकट परिचित ही करें।

12. हर गर्भवती महिला को एच.आई.वी./एड्स और उससे बचाव के तरीकों के बारे में जानकारी होनी चाहिए। अगर महिला एचआईवी से संक्रमित है या उसे इसका शक है तो उसे जानकारी लेने, सलाह-मशविरा करने तथा जाँच कराने के लिए तुरंत प्रशिक्षित स्वास्थ्य

कार्यकर्ता से बात करनी चाहिए, ताकि वह अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सके और अपने बच्चों की एचआईवी संक्रमण से सुरक्षा कर सके।

स्वास्थ्य संदेश घर-घर कैसे पहुंचाएं

स्वास्थ्य संदेश सबको बताने के लिए दोतरफा बातचीत करना जरूरी है। बातचीत का मतलब सिर्फ लोगों को जानकारी देना नहीं है। इसमें लोगों की बात सुनना, उन्हें दिलचस्प और आसान तरीके से जानकारी देना और यह समझाना भी शामिल है कि यह जानकारी उनके जीवन में कैसे काम आ सकती है।

किसी भी नई जानकारी को लोग अपनाते हैं या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि उन्हें जानकारी कैसे, कहाँ से और किसके जरिए मिलती है। लोग किसी भी जानकारी को ज्यादा विश्वास के साथ तभी अपना सकते हैं जब उन्हें यह जानकारी कई अलग-अलग माध्यमों से बार-बार सुनने को मिलेगी।

जानकारी सफल होगी जब

- अगर जानकारी देने वाला व्यक्ति उनका जाना-पहचाना होगा और जिसकी बात पर उन्हें भरोसा होगा।
- वे यह समझ लेंगे कि इस जानकारी से उनके परिवार को लाभ मिलेगा।
- यह जानकारी उनकी अपनी भाषा में दी जाएगी।
- उन्हें इसके बारे में चर्चा करने और प्रश्न पूछकर, अच्छी तरह समझने के लिए बढ़ावा दिया जाएगा कि उन्हें क्या, कब और कैसे और कहाँ करना है।
- निम्न माध्यमों को जानकारी देने के लिए शामिल किया जाएः
    - जनसंचार माध्यम, जैसे रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र।
    - छोटे माध्यम, जैसे पोस्टर, आडियो कैसेट, पर्चे, पुस्तिकाएँ, वीडियो, स्लाइड, फ्लिप चार्ट, टीशर्ट, बैज, और लाउडस्पीकर से घोषणाएँ।
    - आपसी सम्पर्क के माध्यम, जैसे स्वास्थ्य कार्यकर्ता, धार्मिक या सामुदायिक नेता, महिला और युवा संगठन, स्कूल शिक्षक, विकास कार्यकर्ता और सरकारी अधिकारी।

लक्ष्य

हमारा यह लक्ष्य होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति इन संदेशों को जान ले, समझ ले और इन्हें अपनाने के लिए प्रेरित हो तथा इस जानकारी को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाया जा सके और आवश्यक कदम उठाए जा सकें। यदि एक बार में ये स्वास्थ्य संदेश नहीं पहुँच सके या इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो बार-बार और अलग-अलग ढंग से लोगों तक पहुँचाए जाने चाहिए। यदि जानकारी पहुंचाने में कोई अड़चन आए तो उन्हें निम्नलिखित बदलाव द्वारा दूर किया जा सकता हैः

कठिनाईयां/अड़चन	कैसे दूर करें
समस्या की सही जानकारी न होना।	समस्या की जानकारी बढ़ाने के लिए जनसंचार माध्यमों का इस्तेमाल करें और आमने-सामने बातचीत भी करें।
यह समझ न होना कि समस्या कितनी सही है, उसके कारण क्या हैं और उसका समाधान क्या है?	स्थानीय भाषा में उदाहरण देकर दिलचस्प ढंग से जानकारी दें।
समस्या सुलझाने के तरीकों की समझ न होना	• लोगों को जानकारी दें उन्हें समाधानों का पता लगाने और नई क्षमताएँ विकसित करने के लिए मदद दें और जरूरत पडने पर समर्थन भी दें। इस बारे में चर्चा कराएं कि क्या करना है और कैसे करना है। • चर्चा करें कि नए आचरण के क्या फायदे हैं और क्या नुकसान हैं, मौजूदा जानकारी और आदतों से उसका कैसा संबंध है, और उसे कैसे अपनाया जा सकता है। • चर्चा करें कि कौन-कौन से बदलाव अभी हो सकते हैं और कौन-कौन से बदलाव बाद में किए जा सकते हैं।
समर्थन और बढावा देने की जरूरत	• इस बारे में चर्चा करें कि व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर कदम उठाने में क्या अड़चनें आती हैं और उसके क्या फायदे हैं। इस काम में प्रभावित स्थानीय समूहों या लोगों का सहयोग लें।
बढावा देने की जरूरत	• बदलाव लाने में मदद करें और समर्थन दें। बदलाव के लिए चर्चा को बढ़ावा दें।
नए आचरण को बनाए रखने की जरूरत	• चर्चा करें कि नया आचरण अपनाने का क्या नतीजा निकला। अगर कोई ऐसा नतीजा निकला है जिसकी उम्मीद नहीं थी या जो उल्टा है तो उसके कारणों का पता लगाकर हल निकालें। • नतीजों की निगरानी करें, कार्यवाही जारी रखें और नई समस्याओं पर विचार करते रहें।

संदर्भः

1. जीवन के संदेश, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष, न्यूयार्क, 2002।
2. स्वास्थ्य संदेश, युनिसेफ, विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनेस्को, 1989।
3. सुरक्षित मातृत्व, जागरण पत्रिका, अप्रैल 19, 2009।
4. http://www.cdc.gov/malaria/biology/life_cycle.htm।
5. दाई का काम और महिलाओं की स्वास्थ्य पत्रिका, खंड 49, अंक 4, पेज 338-344 ।

धूम्रपान व्यवहारः कारण और निवारण

डा. मनोज कुमार जैन*

वर्तमान समय में धूम्रपान का प्रयोग एक समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है कदाचित् यह समस्या विश्वव्यापी है व युवावर्ग में प्रचलित है जिससे वे विभिन्न प्रकार की रुग्णताओं से प्रभावित हो रहे हैं। इसी संदर्भ में, प्रस्तुत लेख में धूम्रपान से जुड़े हुए विभिन्न पक्षों जैसे धूम्रपान, समाज, स्वास्थ्य समस्याएं, रुग्णताएं, युवावस्था, आदत, रोकथाम आदि विषयों पर चर्चा की गई है एवं उससे संलग्न स्वास्थ्य समस्याओं का विभिन्न क्षेत्रों के शोधार्थियों द्वारा किए गए अध्ययनों को शामिल करने एवं इसकी रोकथाम के संदर्भ में उपयुक्त सुझावों को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है।

धूम्रपान व्यवहार

तम्बाकू का सेवन सदियों से मानव जीवन में प्रचलित है। इस संबंध में यह स्पष्ट करना अत्यंत दुष्कर है कि इसका उपयोग कब व कहां से प्रारंभ हुआ। फिर भी उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्य यह दर्शाते हैं कि मानव द्वारा तम्बाकू का प्रयोग प्राचीन समय से किया जा रहा है। इतिहासकारों के अनुसार कुछ शताब्दियों पूर्व सभ्य देशों में इसके प्रयोग का प्रचलन नहीं था। हालांकि तम्बाकू की जन्मभूमि दक्षिण अमरीका माना जाता है फिर भी, तम्बाकू की खोज 12 अक्टूबर, 1842 में सर्वश्री कोलम्बस महोदय के कुछ साथियों ने क्यूबन आदिवासियों के हाथ में कुछ जलती हुए चिंगारियां के साथ एक विचित्र बनावट का टेढ़ा-मेढ़ा यंत्र देखा जिसमें वे कुछ सूखी पत्तियां रखकर जलाते थे तथा अपना मुँह सुगंधित करते थे। उपलब्ध साहित्य के अनुसार इतिहास में तम्बाकू के प्रयोग का यह सर्वप्रथम उल्लेख है। इस आधार पर तम्बाकू की खोज का श्रेय सर्वश्री कोलम्बस महोदय को जाता है। 1894-96 में कोलम्बस महोदय ने पुनः अमरीका प्रवास के दौरान तथा आपके एक सहयात्री सर्वश्री रोम पैन महोदय ने तम्बाकू सूंघने की रीति का अवलोकन किया।

तम्बाकू आंग्ल भाषा के टुबैको शब्द का हिंदी रूपांतरण है। वस्तुतः टुबेको किसी पौधे का नाम नहीं था बल्कि यह उस विचित्र यंत्र का नाम था जिसे अमेरिका के आदिवासी तम्बाकू पीने के उपयोग में लाते थे। यह यंत्र एक प्रकार की पोली नली होती थी जिसकी आकृति अंग्रेजी के Y अक्षर की भांति होती थी।

सन् 1858 में स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय के डाक्टर फ्रांसिको फर्नांडिस तम्बाकू को सर्वप्रथम यूरोप में लाए। पूर्तगाल स्थित फ्रेंच राजपूत श्री जीन निकोट महोदय ने तम्बाकू की चर्चा यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में फैलाई, संभवतः इसी कारण तम्बाकू के पौधे को निकोटियाना

*अन्वेषक (ग्रेड-I), भारत के महापंजीकार का कार्यालय, जीवनांक प्रभाग (एस.आर.एस.), पश्चिमी खंड-1, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली।

शब्द से संबंधित किया गया। हालांकि तम्बाकू में निकोटीन नामक पदार्थ पाया जाता है, यह भी पौधे के नामकरण को चरितार्थ करता है।

प्रारंभ में तम्बाकू के गुणों को अच्छी दृष्टि से देखा गया, संभवतः इसी कारण सर्वश्री हरबर्ट स्पेन्सर महोदय ने इसे दिव्य तम्बाकू की संज्ञा दी। ऐतिहासिक तथ्य यह दर्शाते हैं कि अमेरिका के वर्जीनिया नामक उपनिवेश के प्रथम गर्वनर श्री राल्फ तथा प्रसिद्ध नाविक सर्वश्री फ्रांसिस ड्रेक महोदय ने इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम के कृपापात्र नाविक सर बाल्टर टेले को तम्बाकू उपहार में दी थी। सोलहवीं शताब्दी में इसकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई, हालांकि विभिन्न धार्मिक नेताओं एवं राजनीतिज्ञों ने इसका विरोध किया। इस संदर्भ में इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम ने तम्बाकू के विरुद्ध काउण्टर ब्लास्ट की रचना की।

भारत के इतिहास में इसका सर्वप्रथम उल्लेख सोलहवीं शताब्दी में मिलता है। धूम्रपान हेतु भारत में तम्बाकू सर्वप्रथम पुर्तगाली व्यापारी लाए। सन् 1605 में पुर्तगालियों ने सम्राट अकबर के एक दरबारी असहवेग के माध्यम से तम्बाकू पीने का यंत्र (हुक्का) भेंट दिया, हुक्के के माध्यम से तम्बाकू सेवन उस काल से सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में प्रचलित हुआ। ऐतिहासिक तथ्य यह दर्शाते हैं कि मुगल सम्राट अकबर ने एक बार ही हुक्के का प्रयोग किया, उनके राज्य वैद्य हकीम अली ने इसके प्रयोग का काफी विरोध किया और फिर कभी सम्राट अकबर को इसे छूने नहीं दिया। इसी क्रम में सर टाम्स रो महोदय ने इंग्लैण्ड के जेम्स प्रथम की ओर से सम्राट जहांगीर को उपहार सामग्रियों के अनेक तथ्यों के साथ तम्बाकू को भी प्रदान किया था।

यदि विकास की प्रक्रिया ध्यान में रखकर धूम्रपान का उल्लेख किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम तम्बाकू का प्रयोग हुक्के के माध्यम से सम्पन्न होता था, कालांतर में सुविधा की दृष्टि से चिलम का आविष्कार हुआ। संभवतः यह वजन में हल्की तथा रखरखाव की दृष्टि से आसान रही होगी। चिलम के पश्चात् चोगी और अंततः सिगरेट अथवा बीड़ी का आविष्कार संभव हुआ। बीड़ी अथवा सिगरेट वजन में हल्की व रखरखाव की दृष्टि से आसान होने के कारण धूम्रपान व्यवहार में जल्द ही लोकप्रिय हो गई।

19वीं शताब्दी के अंत में युवावर्ग की महिलाएँ पुरुषों के साथ अपनी बराबरी दर्शाने हेतु धूम्रपान करने लगीं। इस व्यवहार को छूत की बीमारी भी कहा गया है। इच्छा व व्यवहार का उदय सामान्यतः उन स्थलों से होता है जब धूम्रपान में लिप्त लोग इसके लाभों और फैशन को बढ़ा-चढ़ा कर प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं। तम्बाकू में निकोटीन होने के कारण नशा भी आता है एवं अफीम की भांति निकोटीन भी कुछ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन उत्पन्न करती है । इस तरह धूम्रपान में लिप्त व्यक्ति का शरीर रोज निकोटीन की खुराक की आवश्यकता महसूस करता है । भारतीय संदर्भ में धूम्रपान, सिगरेट, बीड़ी, चिलम व तम्बाकू का प्रयोग सामान्यतया देखने को मिलता है। ग्रामीण अंचलों में मध्यम व श्रमिक वर्ग में सामान्यतः बीड़ी का उपयोग व तम्बाकू खाने का प्रचलन विशेष तौर पर देखने को मिलता है। इसे सामाजिक व्यवहार की भी संज्ञा दी जाती है, क्योंकि व्यक्ति इसे अकेले न पीकर सामूहिक रूप से पीता है। धूम्रपान में बीड़ी के अत्यधिक प्रयोग में लाने के कारण भारत में बीड़ी उद्योग का विकास सिगरेट उद्योगों की तुलना में अधिक देखने को मिलता है।

धूम्रपान व्यवहार विभिन्न कारणों के परिणामस्वरूप देखने को मिलते हैं जैसे मित्रतावश या मित्रों के प्रभावों में धूम्रपान का आरंभ करना। कुछ विशिष्ट कष्टों को कम करने के लिए एवं बतौर फैशन। इस संबंध में फ्रांस में सत्रहवीं से 19वीं शताब्दी के मध्य में प्रचलित तम्बाकू सूंघने के फैशन की चर्चा करना उल्लेखनीय है। इस समय एक साधारण व्यक्ति के बॉक्स में एक सूंघनी का पाया जाना आवश्यक समझा जाता था व इंग्लैण्ड की वृद्ध महिलाएं सिगार पीने जैसे व्यवहार में लिप्त थीं। किंतु जैसे ही तम्बाकू सूंघने का प्रचलन प्रारंभ हुआ तो उच्च आर्थिक स्थिति की महिलाएं इसका प्रयोग करने लगीं एवं उस समय उच्च वर्ग को महिलाओं के सौंदर्य प्रसाधनों में सूंघनी का होना साबुन से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया।

स्वास्थ्य समस्याएं

धूम्रपान व्यवहार एवं उनसे संबंधित स्वास्थ्य समस्याएं संपूर्ण विश्व एवं स्थलों में अपना प्रभाव दिनों-दिन तीव्र गति से विकराल रूप लेती जा रही हैं। धूम्रपान से संबंधित रुग्णताओं के निराकरण हेतु वृहद् एवं अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं एवं खर्चीले उपचार तथा स्वास्थ्य विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। इसी कारण विश्व स्वास्थ्य संगठन (1979) ने धूम्रपान की रोकथाम हेतु विशेष पहल प्रारंभ की है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने (1983-84) से धूम्रपान एवं स्वास्थ्य पर विभिन्न रिपोर्ट्स व प्रयास सुव्यवस्थित प्रकार से प्रारंभ किए।

दुग्गल्स एवं उनके साथियों (1986) ने यह तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि विकासशील राष्ट्रों में लगभग बीस प्रतिशत शिशु पांच वर्ष की आयु के पूर्व ही मृत हो जाते हैं एवं इनमें से एक चौथाई शिशुओं की विभिन्न श्वसन संबंधी रुग्णताओं के कारण मृत्यु हो जाती है। यह विभिन्न श्वसन संबंधी व्याधियां सामान्यतया पर्यावरण संबंधी कारकों यथा धूम्रपान, निवास संबंधी समस्याएं एवं पोषण संबंधी समस्याओं आदि से प्रभावित होती हैं। इस तरह श्वसन संबंधी व्याधियां कुपोषण, दस्त व उल्टी से संबंधी समस्याओं के साथ मिलकर मृत्यु का कारण बनती हैं।

धूम्रपान व्यवहार में लिप्त माताएं, उत्पन्न शिशुओं के स्वास्थ्य को भी प्रत्यक्षतः प्रभावित करती हैं। इस संबंध में कुछ विशिष्ट अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इनमें से फिनलैण्ड के जवैंनिन एवं आस्टर लांउड (1963), फ्रांस के स्कवार्ड एवं उनके साथियों (1972), स्वीडन के कौलैण्डर एवं कोलेन (1971), अमरीका के हार्डो एवं मेलिस्ट (1972), मिलर एवं हाशियन (1974) आदि के शोध कार्य उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपने अध्ययनों के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया कि धूम्रपान में लिप्त माताओं से उत्पन्न शिशुओं का जन्म के समय वजन एवं लम्बाई में तुलनात्मक रूप से कमी होती हैं एवं इनमें मृत्यु का प्रतिशत अधिक पाया गया है।

इस तथ्य में कोई मतभेद नहीं कि धूम्रपान व्यवहार चाहे वह सिगरेट अथवा बीड़ी का पीना हो, तम्बाकू खाना अथवा तम्बाकू सूंघना हो आदि प्रत्यक्षतः गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं के मूल कारण हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1986) के अनुसार 80 प्रतिशत फेफड़ों के कैंसर धूम्रपान से संलग्न है। वियर्ड एवं उनके साथियों (1989) ने अपने अध्ययन के माध्यम से यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि हृदय संबंधी व्याधियों, उच्च रक्तचाप, मधुमेह व हायपरटेंशन आदि रुग्णताएं धूम्रपान से संलग्न लोगों में तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभाव दर्शाती हैं। यांगजिन-शीमंग (989) ने धूम्रपान व मद्यपान का सरीव्रल वेस्कुलर रुग्णताओं के संबंध में अध्ययन

संपादित किया एवं यह निष्कर्ष देने का प्रयास किया कि धूम्रपान व मद्यपान में लिप्त लोगों में इसका प्रतिशत अधिक देखने को मिलता है।

सर्वश्री मदन (1987) के धूम्रपान संबंधी प्रकाशन में उद्धृत डा. आक्सनर के मत प्रस्तुत किए गए हैं, जिनके अनुसार धूम्रपान के कुप्रभावों को दो वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। प्रथम जैविक एवं द्वितीय आर्थिक व सामाजिक। जैविक कुप्रभावों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की फेफड़ों से संबंधी व्याधियां, कैंसर, कफ, हृदय संबंधी व्याधियां, रक्तचाप से संबंधित समस्याएं, मस्तिष्क पर प्रभाव, आंख की रोशनी का प्रभावित होना, सूंघने व चखने की शक्तियों का ह्रास, शीघ्र ही आवेश में आना, पेट का खराब होना, श्वसन संस्थान में व्याधियां उत्पन्न होना यथा-कफ व खांसी, गला खराब होना, ध्वनि यंत्र का प्रभावित होना, पुरुषों में नपुंसकता व महिलाओं में बांझपन का प्रभावी होना आदि महत्वपूर्ण तथ्य हैं। फेफड़ों का कैंसर विशेष तौर पर इस तथ्य पर निर्भर करता है जो व्यक्ति सतत् धूम्रपान में संलग्न रहते हैं व लम्बे समय तक इसे प्रयोग में लाते हैं उन्हें फेफड़ों के कैंसर की संभावनाएं, हुक्का पीने वालों को होंठ के कैंसर की संभावनाएं अधिक होती हैं।

दूसरी ओर युवावस्था में धूम्रपान व्यवहार विटामिन की कमी को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक सीमा तक पूर्ण करने का प्रयास करता है। जैविक कुप्रभावों के अतिरिक्त धूम्रपान आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति, उसके परिवार, स्वास्थ्य पर खर्च व राष्ट्रीय हित की दृष्टि हानिकारक होता है। क्योंकि इसमें अनावश्यक पैसे का ह्रास होता है। कार्य के समय का भी ह्रास होता है व कार्यक्षमता में कमी आती है। राष्ट्र के धन का एक हिस्सा सिगरेट व तम्बाकू आयात करने के कारण विदेशों में चला जाता है, जिससे विदेशी मुद्रा की समस्या और भी कठिन हो जाती है। कार्य समय में कमी का अनुमान इस भांति लगाया जा सकता है कि लोगों को तम्बाकू सूंघने एवं छींकने व नाक साफ करने में डेढ़ मिनट का समय लगता है। इस तरह 24 घंटे में दो घंटे चौबीस मिनट का नुकसान स्वास्थ्य के अतिरिक्त होता है। धूम्रपान न सिर्फ समय व स्वास्थ्य को प्रभावित करता है बल्कि अन्य हानिकारक आदतों से संलग्नता दर्शाता है, जैसेः जूआ व मद्यपान आदि।

डॉ. बेंजामिन (1987) के अनुसार तम्बाकू खाने व पीने से मद्यपान की प्रवृत्ति को संलग्न किया जा सकता है। यह स्नायु संस्थान को प्रत्यक्षता प्रभावित करती है। चित्त में व्याकुलता उत्पन्न करती है। धूम्रपान करने वालों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जैसे कि धूम्रपान न करने वाले, कम धूम्रपान करने वाले। इसी तरह विभिन्न तथ्यों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे सिगरेट अथवा तम्बाकू पीने वाले, हुक्का अथवा चिलम पीने वाले अथवा गुटका खाने वाले एवं तम्बाकू सूंघने वाले। अवधि के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा पांच वर्ष से कम समय से लिप्त, पांच से दस वर्ष से धूम्रपान में लिप्त, दस से पन्द्रह वर्ष से लिप्त, पंद्रह से 20 वर्ष तथा 20 से अधिक वर्षों से धूम्रपान में लिप्त हैं।

ग्लैंड्स एवं पर मिले (1991) ने धूम्रपान में लिप्त लोगों के पास बैठे लोगों के धुआं प्राप्त करने के आधार पर हृदय व्याधियों के अध्ययन का प्रयास किया है। स्कान्ड्राफ एवं किली (1992) ने एक वर्ष से कम अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि उन महिलाओं के शिशुओं में मृत्यु का प्रतिशत अधिक देखने को मिलता है जो धूम्रपान में पूर्व से ही लिप्त रहती है। शर्मा (993) ने बीड़ी उद्योग में लिप्त श्रमिकों का अध्ययन सम्पन्न

किया एवं जो श्रमिक धूम्रपान व्यवहार में लिप्त थे उनके स्वास्थ्य समस्याओं के अध्ययन का प्रयास सम्पन्न किया। इन्होंने अपने अध्ययन के माध्यम से विभिन्न श्वसन संबंधी व्याधियों यथा- सीने के दर्द, पेट दर्द, रक्तचाप तथा क्षयरोग को धूम्रपान से संलग्न करने का प्रयास किया।

रॉस एवं उनके साथियों (1995) ने धूम्रपान प्रभावित पर्यावरणीय प्रभावों का स्वास्थ्य पर अध्ययन सम्पन्न किया। लॉयन्स एवं उनके साथियों (1995) ने तम्बाकू के उपयोग व जीवन स्तर को संबंधित करने का प्रयास किया।

शर्मा (1996) ने धूम्रपान व आवास स्थितियों को स्वास्थ्य समस्याओं से संलग्न कर अध्ययन का प्रयास किया एवं अपने अध्ययन के माध्यम से यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि धूम्रपान व अस्वस्थ आवासीय पर्यावरण गंभीर श्वसन व्याधियों, कॉलरा, डायरिया, क्षयरोग, टायफाईड व पीलिया का कारण बनती है। इस तरह धूम्रपान भारतीय संदर्भ एवं विकासशील राष्ट्रों के संदर्भ में स्वास्थ्य हेतु गंभीर समस्या के रूप में उभरा है। इस संदर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन की पहल उल्लेखनीय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1984) ने धूम्रपान व स्वास्थ्य पर काठमांडू में महत्वपूर्ण संगोष्ठी का आयोजन किया एवं उनकी रिपोर्ट प्रस्तुत की। विश्व स्वास्थ्य संगठन की विभिन्न रिपोर्टों में (1975, 1976, 1982, 1983, 1985, 1989, 1993) प्रस्तुत करने एवं धूम्रपान के बढ़ते प्रकोप को रोकने व उनसे संबंधित कुप्रभावों को विश्वव्यापी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

रोनन एवं उनके साथियों (1995) ने धूम्रपान में लिप्त लोगों के स्वास्थ्य समस्याओं के अध्ययन का उल्लेखनीय प्रयास किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में डेविड (1995) ने स्वास्थ्य व विभिन्न दंत व्याधियों के संबंध में अपना अध्ययन सम्पन्न किया एवं इन्होंने स्वास्थ्य व धूम्रपान को प्रत्यक्ष रूप से संलग्न करने का प्रयास किया है। यह विदित है कि धूम्रपान करना व तम्बाकू खाना नशे की प्रारंभिक अवस्था है। इस अवस्था के पश्चात् ही व्यक्ति गांजा, अफीम एवं वेश्यावृत्ति जैसे तथ्यों की ओर अग्रसर होता है। इस दृष्टि से धूम्रपान विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं व इन रुग्णताओं के निराकरण हेतु खर्चीली एवं बेहतर प्रकार की स्वास्थ्य सुविधाओं एवं विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। जनस्वास्थ्य व संबंधित रुग्णताओं के कारण लोगों की कार्यक्षमताएं एवं राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। इस गंभीर स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक समस्या के रोकथाम के लिए एक विश्वव्यापी पहल की आवश्यकता है।

रोकथाम

दिनोंदिन बढ़ते धूम्रपान व्यवहार व उनसे प्रभावित समस्याओं को देखते हुए धूम्रपान व्यवहार की रोकथाम हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं। ये सुझाव जैन (1998) के अध्ययन पर विशेष रूप से आधारित हैः

- विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट है कि अधिकांश सदस्य धूम्रपान व्यवहार 15 से लेकर 20 वर्ष की आयु के मध्य प्रारंभ करते हैं। वस्तुतः यह वह किशोरावस्था है जब व्यक्ति इस प्रकार के तथ्यों की ओर सामान्यतः अग्रसर होता है। अतः परिवार, समाज व शिक्षकों आदि का यह कर्त्तव्य है कि इस आयु के बच्चों पर विशेष ध्यान दें ताकि धूम्रपान व्यवहार को एक सीमा तक रोका जा सके।

- प्राप्त तथ्य व उपलब्ध अध्ययन संकेत देते हैं कि अधिकांश धूम्रपान में संलग्न सदस्य संयुक्त परिवार से संबंधित हैं अतः इसे सीखा हुआ व्यवहार कहा जा सकता है क्योंकि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या तुलनात्मक अधिक व धूम्रपान में संलग्न सदस्य की प्राप्ति संभव है। इस तथ्य की पुष्टि यह तथ्य भी करते हैं कि धूम्रपान में लिप्त सदस्यों के पिता अथवा भाई भी इसी कार्य में लिप्त पाए गए हैं। इस व्यवहार को मित्रों के माध्यम से सीखा हुआ देखने को मिला है। अतः इस सीखे हुए व्यवहार के प्रति लोगों को जागरुक कराना अत्यंत आवश्यक है ताकि छूत की भांति फैलते धूम्रपान जैसे रोग के प्रकोप को रोका जा सके।
- धूम्रपान के स्वास्थ्य पर पड़े प्रभावों का विस्तृत अध्ययन विभिन्न क्षेत्रों में संपन्न किया जाए, ताकि अन्य नवीन तथ्य उभरकर सामने आ सकें व उनसे जन सामान्य को परिचित कराया जा सके।
- इस तथ्य से जन सामान्य को वृहत् तौर पर अवगत करवाया जाए कि लगभग 80% फेफड़ों के कैंसर धूम्रपान से संलग्न पाए जाते हैं एवं जैसे-जैसे धूम्रपान में संलग्न सदस्यों की आयु व धूम्रपान के समय में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे इसके स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव यथा-क्षयरोग, दमा व अन्य फेफड़ों से संबंधित व्याधियां प्रभावी होती जाती हैं। इन तथ्यों के प्रति जन सामान्य में जागृति विभिन्न जन संचार माध्यमों के माध्यम से करवाई जाए जिससे इस कार्य में संलग्न लोग जितनी जल्दी हो सके धूम्रपान व्यवहार त्याग सके।
- प्राथमिक विद्यालयों के पाठयक्रमों में इस प्रकार के अध्याय समाहित किए जाएं जिससे धूम्रपान के स्वास्थ्य पर प्रभावों को भलीभांति समझा जा सके व इसी भांति के तथ्य विभिन्न जन संचार माध्यमों से भी प्रसारित किए जाएं ताकि धूम्रपान का प्रारंभ यथासंभव शुरु न हो सके एवं राष्ट्र के स्वास्थ्य स्तर को ऊपर उठाया जा सके।

संदर्भः

1. सी.वियर्ड, ई. मेरी थोमस, एफ. कोटाइक जोन, एंगर्स एंड जे, डेविड वलाई (1989) इफेक्ट ऑफ सिगरेट स्मोकिंग, हाइपरटेंशन, डायबिटीज एंड स्टीरियोडल एस्ट्रोजन यूज ऑन कोरोनरी हेल्थ डिसीज अमंग 40 टू 59 इयर ओल्ड वूमेन, 1960 थ्रो 1982, मायोक्लिन प्रोक, 64 (12):1471-1480।
2. आर. डगलस, भी. ओडा, एस पटनायक एंड बी. कुमार (1986): एक्यूट रेस्पायरेटरी इन्फेक्शंस इन साऊथ ईस्ट एशिया, सीरो टेक्नीकल पब्लिकेशन, नं. 8:1-48।
3. एस.ए. ग्लेन्ट्ज, डब्ल्यू.डब्ल्यू. परमिले (1991): पेसिव स्मोकिंग एंड हार्ट डिसीजः एपीडिमियोलॉजी फिजियोलॉजी एंड बायोकेमिस्ट्री सरकुलेशन, 83-1-12।
4. एल.ओ. लायन्स एंड पेज लिटिल (1995): टोबेको यूज एंड क्वालिटी ऑफ लाइफः टेबोको कंट्रोल सार्क एडीशन, 1:2 (इंट.वोल. 3 नं. 1, 196)।
5. सी.रॉस, जेम्स आर. ब्रऊसन, जॉन सी., डेविस जैक्सन थाम्पसन, विलकरसन (1995): प्रीडिक्टर्स ऑफ इंडीविजुअल एक्शन टू रिडयूस एक्सपोजर टू इनवायरानमेंटल टोबेको स्मोक, टोबैको सेन्ट्रल सार्क एडीशन, 1:15 (इंट.वोल. 3, नं. 3) पेज 216-221।

6. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1985): स्मोकिंग एंड हेल्थ प्रोसीडिंग्स ऑफ ए रीज़नल सेमीना, सी टी पी, नं. 7।
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1985): स्मोकिंग कंट्रोल स्ट्रेटजीशन डेवलपिंग कंट्रीज. टी आर एस, नं. 695।
8. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1985): टोबैको हेबिट्स अदर देन स्मोकिंग बीटल, क्विड एंड एरीका नट, आई ए आर सी मोनोग्राफ, वॉल. 37।
9. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1984): स्मोकिंग एंड हैल्थ, रिपोर्ट ऑफ ए रीज़नल सेमीना, काठमांडू, नेपाल, 26-30 मार्च, सीरो टेक्नीकल पब्लिकेशन, नं. 7।

बढ़ता प्रदूषण - पनपते खतरे

वैशाली जैसवाल*

स्वतंत्रता के पश्चात नियोजित विकास हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं के तहत अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए। हरित क्रान्ति द्वारा खाद्यान्न में तीन गुनी वृद्धि हुई। वर्ष 1957 में खाद्यान्न का उत्पादन लगभग 5 करोड़ टन था। अब यह लगभग 20 करोड़ टन पहुँच गया है। औद्योगिक उत्पादन में पांच गुणा वृद्धि हुई है। औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में तीसरा है। खाद्यान्न के अतिरिक्त अब इंजीनियरिग का सामान भी निर्यात किया जाता है। भारत की गणना अब विकासशील देशों में होती है। परन्तु तीव्र गति से बढ़ती आबादी, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण पर्यावरण में असंतुलन पैदा हो गया है। चारों और फैला वायु प्रदूषण मानव जीवन के लिए खतरा बनता जा रहा है। पहाड़ों पर भूस्खलन और मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ और अनावृष्टि से लोग त्रस्त हो गए हैं। पेयजल की कमी और नदियों में बढ़ता प्रदूषण भी गंभीर समस्या बनता जा रहा है।

कार्बन डाईऑक्साईड, कार्बनमोनो ऑक्साईड जैसी जहरीली गैसें, उद्योगों व कारों से निकलने वाला धुँआ, पॉलीथीन और जलने के बाद निकलने वाली गैसों आदि के कारण हरित गृह प्रभावित (ग्रीन हाउस इफेक्ट) हो रहा है, जिससे पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हो रही है फलस्वरूप, पृथ्वी में गर्मी बढ़ रही है और हिम खंड पिघल रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (एस.ए.सी.) ने हिमालय के हिमनदों का ताजा सर्वे करने के बाद खुलासा किया है कि हिमनद 20 फीसदी से भी ज्यादा सिकुड़ गए हैं। यह नतीजा 433 से भी ज्यादा हिमनदों का सर्वेक्षण करने के बाद निकाला गया है। जलवायु पर विनाशकारी असर डालने वाली यह ग्लोबल वार्मिंग, आने वाले समय में भारत के लिए खाद्यान्न संकट उत्पन्न कर सकता है।

पर्यावरण के मुख्य घटक

1. जीवमंडल- जीवमंडल एक जीवनदायी या जीवन-पोषक परत है। इस आवरण का संघटक सामान्य रूप से 30 किमी से कम मोटी वायु, जल, स्थल, मिट्टी तथा शैल की पतली परत से बनता है। जीवमंडल मौलिक रूप से दो संघटकों (1) जैविक संघटक जैसे मानव-सहित जन्तु तथा सूक्ष्म जीव, (2) अजैविक संघटक जैसे वायु, जल, स्थल और उर्जा संघटक में बनता है। ये दोनों संघटक आपस में एक-दूसरे पर आधारित है।

2. जलमंडल- यह पृथ्वी का वह भाग है जो पृथ्वी की हर दिशा में पानी और बर्फ के रूप में है। यह पूरी पृथ्वी का 7/10 भाग है और लगभग 1460 मिलियन घन कि.मी. है। इस पूरी जल मात्रा का अधिकांश भाग (लगभग 97 प्रतिशत) महासागर और समुद्रों के रूप में है। शेष 3 प्रतिशत पानी, नदियों, झीलों, भूगर्भ में, ध्रुवों पर बर्फ के रूप में और वायुमंडल में पानी के भाप के रूप में मिलता है।

* सहायक अनुसंधान अधिकारी, प्रबंध विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

3. स्थलमंडल- यह पृथ्वी का वह भाग है जिस पर जीव-जंतु निवास करते हैं, वनस्पतियाँ उगती हैं। स्थलमंडल में असंख्य प्राकृतिक खनिज भरे पड़े हैं। इसकी रचना ठोस चट्टानों, विविध प्रकार की मृदाओं और अनेक पिछले पदार्थों के पिंडों से हुई है। यह जीवमंडल का अत्यंत महत्वपूर्ण संघटक है।

4. वायुमंडल- पृथ्वी की हर दिशा में हजारों किलोमीटर उंचाई तक फैले गैसीय आवरण को वायुमंडल कहते हैं। वायुमंडल की रचना मुख्यरूप से गैसों, जलवाष्प और धूल के कणों से हुई है। नाइट्रोजन और ऑक्सीजन वायुमंडल की प्रमुख गैसें हैं।

पर्यावरण सदैव एक क्रमबद्ध तंत्र के अधीन संचालित होता रहता है। पर्यावरण किसी एक तत्व का नाम नहीं अपितु अनेक तत्वों का समूह है और ये सभी तत्व पृथक होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। पर्यावरण के विविध तत्व प्राकृतिक निधियों के अंतर्गत संचालित होते हैं परंतु जब अन्य कारणों से पृथ्वी में असंतुलन आ जाता है तो पर्यावरण में असंतुलन स्पष्ट दिखाई देने लगता है। भूस्खलन, बाढ़, सूखा, अकाल, ज्वालामुखी का फटना, उष्ण चक्रवात आंधियों का आना वैसे तो प्राकृतिक विपदाएं हैं परंतु इनका भी पर्यावरण संतुलन को बिगाड़नें में विशेष योगदान है।

मानव ने गुफाओं से निकल कर अपने जीवन को आरामदायक व सुखद बनाने के प्रयास में प्रकृति से छेडछाड करना प्रारंभ किया। सुख-सुविधाओं की अंतहीन तृष्णा से ग्रसित मानव ने प्रकृति का दोहन किया। इस स्थिति में मानव को प्रकृति का भक्षक बना दिया। मानव द्वारा प्रकृति का प्रयोग करते समय यदि प्रकृति के संतुलन और विकास की गति के सामंजस्य को बनाये नहीं रखा जाता है तो पर्यावरण में भीष्ण असंतुलन उत्पन्न होने लगता है तथा पृथ्वी पर विद्यमान प्राणियों पर संकट मंडराने लगता है। प्राकृतिक असंतुलन से उत्पन्न हुई इसी घातक स्थिति का नाम प्रदूषण है। **पर्यावरण प्रदूषण का तात्पर्य प्रकृति के प्रत्येक घटक में विद्यमान आवश्यक तत्वों के निश्चित अनुपात में कमी और अनावश्यक तत्वों में वृद्धि का हो जाना।** इस प्रक्रिया में प्राकृतिक जल, वायु, भूमि इत्यादि क्रमिक रूप से दूषित होते रहते हैं। इससे पर्यावरण में हानिकारक, अवांछित अपशिष्ट पदार्थ पैदा हो जाते हैं। वायु, जल, स्थल के दूषित होने से मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने लगता है और अनेक रोगों तथा विकारों का जन्म हो जाता है। प्रदूषण एक ऐसी अवांछनीय स्थिति है जब भौतिक, रसायनिक तथा जैविक परिवर्तनों के द्वारा वायु, जल तथा धरातल अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता ही खो बैठते हैं और जीवधारियों के लिए हानिकारक सिद्ध होने लगते हैं।

प्रदूषण के प्रकार

1. **वायु प्रदूषण** - वायु में हानिकारक पदार्थों को छोड़ने से वायु प्रदूषित हो जाती है। ताप, विद्युत गृह, सीमेंट, लोहे के उद्योग, तेल शोधक उद्योग, खान, पैट्रोरसायन उद्योग इत्यादि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। कुछ प्राकृतिक कारणों से जैसे रेतीले तूफान, जंगलों की आग व घास के जलने से उत्पन्न धुँआ कुछ ऐसे रसायनों को जन्म देता है जिससे वायु प्रदूषित हो जाती है। प्रदूषण का स्रोत कोई भी देश हो, पर उसका प्रभाव पूरे विश्व पर्यावरण पर पड़ता है।

2. **जल प्रदूषण** - जहरीले पदार्थ झीलों, झरनों, नदियों, सागर तथा अन्य जलाशयों में जाकर घुल जाते हैं या तैरते रहते हैं। इससे पानी प्रदूषित हो जाता है। उसकी गुणवत्ता घट जाती है। प्रदूषक नीचे भूतल में जाकर जल को प्रदूषित कर देते हैं। कूड़ा-कचरा, हानिकारक रसायन अप्राकृतिक डिटर्जेंट, घर से निकलने वाली नालियाँ, औद्योगिक निस्तारित कूड़ा, घरों से होने वाला रिसाव, कृषि, अवशिष्ट, घरेलू अवशिष्ट आदि हैं। प्राकृतिक रूप में भी जल प्रदूषित होता रहता है, जैसे--जल में मिश्रित होने वाली विभिन्न गैसें, मृदा, खनिज, ह्यूमस पदार्थ, जीव-जंतु का मल-मूत्र आदि है। जल प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिससे विविध प्रकार के रोगों का संक्रमण हो जाता है, जैसे- अतिसार, पेचिश, ज़ुकाम, हैजा, पीलिया आदि।

3. **ध्वनि प्रदूषण** - शोर एक अनचाही ध्वनि है। मनुष्य द्वारा निर्मित ध्वनियों में मशीन, कारें, रेलगाडियां, हवाई-जहाज, पटाखे, विस्फोटक आदि शामिल हैं। ध्वनि प्रदूषण, निद्रा, श्रवण शक्ति शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता हैं। ध्वनि की तीव्रता को नापने की निर्धारित इकाई को डेसीबल कहते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि 100 डेसीबल से अधिक की ध्वनि हमारी श्रवण शक्ति को प्रभावित करती है।

4. **रेडियोधर्मी प्रदूषण** - रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव सबसे पहले जापान में देखा गया। वर्ष 1996 में हेनरी बैकरान ने सर्वप्रथम रेडियोधर्मी तत्वों की खोज की थी। तकनीकी विकास के लिए वैज्ञानिकों ने रेडियोधर्मी पदार्थों का उपयोग किया, परिणामस्वरूप परमाणु ऊर्जा का जन्म हुआ। आणविक विस्फोटों के कारण संपूर्ण वायुमंडल रेडियोधर्मी पदार्थों से परिपूर्ण हो गया है और विकिरण का स्तर निरंतर बढ़ता जा रहा है। विकिरण का प्रभाव रक्त निर्माण करने वाले ऊतक, त्वचा, प्रजनन ग्रंथियों, नेत्र, फुप्फुस पर देखा गया है।

जनसंख्या वृद्धि

पर्यावरण प्रदूषण एवं परिस्थितिकीय असंतुलन का मूल कारण मानव जनसंख्या में वृद्धि है, क्योंकि कृषि में विस्तार, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण आदि बढ़ते मानव समुदाय के ही प्रतिफल हैं। जनसंख्या में लगातार वृद्धि होने के कारण सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनो के तीव्रता पूर्वक दोहन के कारण अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान समय तक विश्व जनसंख्या में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हुई है कि विश्व जनसंख्या के दोगुना होने की अवधि निरंतर कम होती जा रही है।

जनसंख्या की दृष्टि से पर्यावरण को निम्नलिखित कारण प्रभावित करते हैं:

1. विश्व की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि
2. नगरों से विस्तार तथा नगरों में जनसंख्या के जमघट में वृद्धि
3. विश्व के विकसित एवं विकासशील प्रदेशों की जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ता अंतराल
4. नगर ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि

जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप मानव को रहने के लिए भूमि, कृषि, पशुपालन एवं अन्य आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों के लिए स्थान की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे कार्यों के लिए वह वनों को साफ करता है, वन्य जीवों को मारता है, बांध बनाता है, नहरे, सड़कें, रेलमार्ग बनाता है। उद्योग स्थापित करता है और प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम शोषण करने लगता है, जो निम्नलिखित रूपों में दिखता हैः-

1. मृदा की प्राकृतिक, रसायनिक एवं जीवाणु संरचना में परिवर्तन।
2. भूमिगत जल की मात्रा एवं उत्तमता में परिवर्तन।
3. ग्रामीण क्षेत्रों की जलवायु में सीमित एवं नगरीय क्षेत्रों की जलवायु में अत्यधिक परिवर्तन।
4. जीव-जंतुओं एवं वनस्पति की अनेक प्रजातियों का लुप्त होना।
5. कृषि विस्तार भूमि का अधिक उपयोग, उर्वरा शक्ति में कमी।
6. संसाधनों का शोषण।

मौसम में बदलाव

फॉसिल ईंधन अर्थात् कोयला, तेल के जलने से गैस बड़ी मात्रा में वातावरण में विमुक्त होती है। सामान्य स्थिति में पौधे कार्बन डाइआक्साइड को ग्रहण कर प्राणवायु में बदल देते हैं लेकिन, वन-विनाश और शहरीकरण की प्रवृत्ति से दिनोंदिन इस प्राकृतिक व्यवस्था में बाधा उत्पन्न हो गई है। फलस्वरूप कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा वायुमंडल में पर्याप्त मात्रा में व्याप्त रहती है। यह गैस धूप को गुजरने देती है लेकिन पृथ्वी के वायुमंडल से ताप को पुनः विकसित नहीं होने देती जिससे वायुमंडल का ताप धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा इसी प्रकार बढ़ती रही तो अगले 15 वर्षों में धरती के ताप में 3^0 - 5^0 तक अनावश्यक वृद्धि हो जाएगी। इसके गंभीर परिणाम होंगे।

बचाव के कुछ उपाय

1. प्रदूषण रहित टेक्नालॉजी - उद्योगों में ऐसी टेक्नालॉजी विकसित करें जो प्रदूषण रहित हो, अर्थात् औद्योगिक कचरे का विनाश ऐसे ढंग से हो कि वह वायु अथवा जल को प्रदूषित न करे।
2. पर्यावरण संरक्षण की चेतना का विकास पर्यावरणीय शिक्षा के माध्यम से किया जाना चाहिए।
3. पेयजल स्रोतों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
4. औद्योगिक बाहित जल के उपचार की विधियो पर अनुसंधान किए जाने चाहिए।
5. कम हानिकारक उत्पादकों की खोज और सौर चालित मोटर कार आदि का निर्माण होना चाहिए।
6. कूडा-करकट को ठोस बना कर ईटों में परिवर्तित कर उपयोग में लाना।

संदर्भः

1. पर्यावरण डाइजेस्ट।
2. पर्यावरण और हमः संपादक शुकदेव प्रसाद, प्रमाण प्रकाशन, दिल्ली।
3. पर्यावरण समस्या और समाधानः (1997): शिवानंद नौटियाल, सामयिक प्रकाशन।

मोटापे से बचावः कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु

मनोज कुमार झा*

मोटापा न केवल खूबसूरती को बिगाड़ता है बल्कि कई प्रकार के रोगों को भी आमंत्रित करता है। खान-पान में अनियमितता, रहन-सहन में लापरवाही और आराम तलब जीवनशैली मोटापे के प्रमुख कारण हैं, इन सभी कारणों से शरीर पर चर्बी की परत बढ़ती जाती है और एक दिन यह अभिशाप बन जाती है। आजकल की भाग-दौड़ भरी जिन्दगी जिसमें एक ओर नियमित व्यायाम का समय नहीं मिलता तो दूसरी ओर फास्टफूड तथा जंकफूड का सेवन शरीर के लिए हानिकारक सिद्व हो रहा है। ऐसी जीवनशैली मोटापे की समस्या को आमंत्रण देती है। मोटापे से बचने के लिए हम निम्नलिखित महत्वपूर्ण जानकारियों से लाभान्वित हो सकते हैंः

1. प्रत्येक व्यक्ति को खान-पान पर पूरी तरह ध्यान देना चाहिए सलाद, फल या ताजे फलों का जूस का ज्यादा सेवन करें. सलाद पर क्रीम, सॉस इत्यादि का कम इस्तेमाल करें।
2. कई लोगों को दिन में कई बार कुछ-कुछ खाने की आदत होती है, या कई लोग टेलीविजन देखते समय खाना खाते रहते हैं, इससे मोटापा बढ़ता है, कम समय के अन्तराल में बार-बार खाने से बचें।
3. आइसक्रीम, गुलाबजामुन, केक, पेस्ट्री, डिब्बाबन्द खाद्य पदार्थों का प्रयोग कम-से-कम करें. ऐसे खाद्य पदार्थों की जगह केले या अनानास के चिप्स खाएँ।
4. रोटी हमेशा सूखी ही खाएँ, अधिक तली हुई चीजों से हमेशा बचने की कोशिश करें।
5. ज्यादा देर तक खाली पेट नहीं रहें या जरूरत से ज्यादा भी नहीं खाएँ। दिन में खाने के बाद कुछ देर आराम करें तथा रात को खाने के बाद कुछ देर चहलकदमी करें।
6. नाश्ते या भोजन में अंकुरित अनाज, सलाद या सूप का प्रयोग अवश्य करें। ये एक तरफ तो आपकी चर्बी को कम करेंगें वहीं दूसरी ओर कब्ज को भी दूर करेंगें।
7. छोटे-छोटे कामों के लिए भी वाहन का प्रयोग न करें। इन कामों को करने के लिए पैदल ही जाएँ। इससे आपको सैर करने के लिए अलग से समय नहीं निकालना पडेगा। इसके अलावा झाड़ू-पोंछा लगाना, कपड़े धोना, घर की सफाई करना, साइकिल चलाना इत्यादि भी आपकी चर्बी को कम करने में सहायक होंगे।
8. नियमित समय पर भोजन करें, मांसाहार जैसे मछली, मांस या चिकेन की मात्रा कम ही लें। रात को सोने से तीन घंटा पहले ही भोजन कर लेने की कोशिश करें। इससे पाचन क्रिया अच्छी रहेगी।
9. पानी अधिक पियें, भैंस के दूध की बजाय गाय के दूध का सेवन करें। दही खाना हो तो मक्खन निकाली हुई दही या छाछ पीयें। कच्चा पनीर अवश्य खाएँ क्योंकि इससे आपका वजन घट जाएगा।
10. योगासन अवश्य करें, तेज कदमों से सैर करने की कोशिश करें।

* नेशनल इन्वायरमेंटल एण्ड हाईजैनिक एसोशिएशन, चेन्नई, तमिलनाडु-600020।

11. खाने में रेशेदार पदार्थों का उपयोग ज्यादा करें। पपीता, खरबूज, तरबूज आदि का सेवन करें।

12. कुछ लोगों का मानना है कि एक वक्त भोजन करने से मोटापा कम होता है परन्तु यह उनकी भूल है। इस गलत धारणा से लाभ के स्थान पर हानि ही होगी।

इस प्रकार नियमित खान-पान और दिनचर्या में परिवर्तन लाकर बहुत हद तक मोटापा को कम किया जा सकता है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण*

जगदीश सिंह रावत†

प्राचीन काल से ही भारत एक ग्रामीण छवि वाला देश रहा है, उस समय आधुनिक काल की तुलना में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था ग्रामीण व्यवस्था पर निर्भर करती थी, अर्थात् पंचायत संस्था एवं व्यवस्था के रुप में ग्रामवासियों से संबंधित सभी मामलों का निपटारा करती थी। साथ ही, पंचायत का फैसला सर्वमान्य होता था। पंचायत को न्यायिक, भू-संबंधी एवं फौजदारी इत्यादि के मामलों में पूर्ण अधिकार प्राप्त था। पंचायत के सदस्यों का चयन एक निर्धारित समय के लिए ग्रामीणों के माध्यम से किया जाता था। पंचायत के सदस्यों को पंच परमेश्वर की उपाधि से नवाजा जाता था। समिति के अध्यक्ष को ग्राम प्रधान कहा जाता था। साथ ही, अन्य पंचों में एक प्रमुख सरपंच की भूमिका का निर्वाह करता था, जो बैठकों की गतिविधियों एवं ग्रामीणों से संबंधित मामलों का अभिलेख रखता था साथ ही कार्यविधि संबंधी मुद्दों पर पंचायत में अपना पक्ष रखता था।

उस समय की पंचायत व्यवस्था में अनेक प्रकार की खामियां विद्यमान थीं। जिसका प्रमुख कारण "पुरुष प्रधान" समाज का होना था। अभिप्राय है कि समाज में स्त्री को निम्न दर्जा दिया जाता था तथा उसे हेय दृष्टि से देखा जाता था। परिवार कुटुम्ब एवं कबीलें में महिलाओं को बोलने तथा निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त नही था।

समय के साथ-साथ समाज में जागरुकता पैदा हुई और महिलाओं को आज समाज में यथोचित स्थान प्राप्त है। भारत सरकार ने महिला सशक्तीकरण एवं समाज में उसको पुरुष के समकक्ष स्थान देने के उद्देश्य से महिलाओं के लिये पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण का प्रावधान रखा है। इस आरक्षण को हमारी सत्ता पक्ष एवं विपक्ष के सभी सांसदों, विधायकों एवं अन्य निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों का भरपूर सहयोग एवं समर्थन मिला है। यही कारण है कि आज महिला घर की चारदीवारी तक ही सीमित न होकर, अन्तर्राष्ट्रीय मंचों एवं जीवन के हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं। यह तथ्य अत्यंत ही सत्य है कि समाज में महिला, एक ममतामयी माँ, आदर्श पत्नी एवं एक कुशल गृहणी ही नही, अपितु एक पथप्रर्दशक के रुप में अपनी अद्वितीय भूमिका का निर्वाह कर रही है। महिला के अथक प्रयासों का परिणाम ही है कि आज समाज के कोने-कोने में महिलाओं की बुलंद आवाज हमारे समाज को झकझोर रही है। साथ ही, समाज के विकास एवं प्रगति में अपना बहुमूल्य योगदान दे रही है।

हमारे सांसदों, नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों एवं अन्य पदाधारियों को इस बात का आभास हुआ कि समाज में महिलाओं की अवहेलना करना, समाज को वर्षों पीछे धकेलना है, तभी तो राजनीति की प्रथम व्यवस्था में महिलाओं के लिए उपयुक्त आरक्षण पर विशेष बल देते हुए, सभी सांसदों ने ध्वनि मत से कानून निर्माण किया है। साथ ही, इन कानूनों/अधिनियमों के कार्यान्वयन, प्रबोधन एवं मूल्यांकन पर भी विशेष बल दिया है।

---

* हिन्दी माध्यम से निबन्ध प्रतियोगिता - 2009 में प्रथम पुरस्कृत निबन्ध।

† सहायक, अकादमिक अनुभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

अभी भी हमारे देश की लगभग 70% आबादी गाँवों में निवास करती है। अतः पंचायती राज में महिलाओं के आरक्षण के पीछे अनेक कारण हैं। भारत में संसद के साथ-साथ पंचायती व्यवस्था में भी महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई है। आज महिलायें गाँवों के विकास हेतु पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से अनेक विकास संबंधी गतिविधियां चला रही है। जिनमें प्रमुख हैः

1. प्रत्येक गाँव में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करवाना, विशेष रुप से बालिकाओं को।
2. ग्रामीण महिलाओं को प्रसवपूर्व, प्रसवकालीन एवं प्रसवोत्तर उपचार व्यवस्था उपलब्ध कराना।
3. आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता एक महिला ही होती है जो कि ग्रामीण परिवेश में ही पत्नी-बहिन एवं महिला एवं बाल स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों का निर्वाह करती है।
4. माँ-शिशु के पर्याप्त उपचार एवं पोषण संबंधी गतिविधियों में अपना योगदान देना।
5. प्रत्येक गाँव में सफाई, स्वास्थ्य रक्षा एवं स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था करना।
6. विद्यालयों में शिक्षा संबंधी गतिविधियों का कार्यान्वयन, प्रबोधन एवं मूल्यांकन करना तथा इस दृष्टि से पिछड़े विद्यालयों को पर्याप्त सहायता एवं सहयोग की दिशा में सरकारी तंत्र को अवगत करवाना।
7. माँ एवं बच्चे को समय-समय पर लगने वाले टीको की व्यवस्था करना तथा टीका प्रतिरक्षीकरण में अपनी भूमिका का निर्वाह करना।
8. समाज के जनसाधारण एवं कमजोर वर्ग के विकास के प्रति जागरुकता।
9. गाँवों में कृषकों एवं खेतीहर मजदूरों को पर्याप्त सहायता प्रदान करना, जैसे उन्नत बीज, यंत्र एवं अन्य तरह की आर्थिक सहायता इत्यादि।

पंचायती राज व्यवस्था की प्रगति एवं विकास में हमारी सरकार, गैर-सहकारी संगठनों, निजी संस्थाओं एवं अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं का अभूतपूर्व योगदान है। ऐसी असंख्य संस्थाएँ एवं गैर-सरकारी संगठन है जो पंचायत व्यवस्था को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से अपनी सहायता एवं सर्मथन प्रदान कर रहे है। इनमें "जागोरी" नाम की एक गैर-सरकारी संगठन की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। हमें समाज के विकास हेतु न केवल पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाना है, अपितु महिला को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ाना है। यह तभी संभव है जब हम उसे परिवार, समाज एवं देश में एक अधिकार प्रदान करेगें और उसके चहुँमुखी विकास तथा सुदृढ़ीकरण पर विशेष बल देगें।

पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत महिलाएँ आरक्षण के माध्यम से उल्लेखनीय कार्य कर रहीं हैं तभी तो पंचायत से ब्लाक, ब्लाक से खण्ड, खण्ड से जिला, जिला से राज्य एवं राज्य से केन्द्र स्तर तक आज महिलाओं ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। सौभाग्य ही है कि आज हमारे देश की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल भी एक महिला हैं जो देश का प्रतिनिधित्व कर रहीं हैं। उन्होंने न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी छाप छोड़ी है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की अधिक संख्या एवं आरक्षण के फलस्वरुप भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद में कभी आयी है, क्योंकि अपनी प्रकृति के अनुसार एक महिला

पुरुष के मुकाबले अत्यंत सहनशील, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार होती है। पंचायत व्यवस्था में धन का लेन-देन पंचायत अधिकारियों के माध्यम से होता है। सरकार द्वारा ग्रामीण योजनाओं के लिए पर्याप्त वित्त की व्यवस्था की जा रही है, जिसके अन्तर्गत पंचायत अधिकारियों के संयुक्त खातों में धनराशि स्थानांतरित की जाती है। फलस्वरुप धनसंबंधी गड़बड़ी एवं गबन होने के कम आसार होते हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाएं किसी भी पक्ष पर अपना फैसला सुनाने के प्रति अत्यधिक सजग एवं संवेदनशील होती है। वे ग्रामीण परिवेश से जुड़े सभी मामलें में उत्कृष्ट एवं उल्लेखनीय भूमिका निभाती है।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि सरकार अकेले अपने दम पर महिलाओं के हितों के प्रति शत्-प्रतिशत् सक्षम होगी और यह संभव भी नही है, क्योंकि पंचायत व्यवस्था रूपी पगडंडी पर चलने के लिए समाज के हर वर्ग को अपना सहयोग एवं समर्थन देना होगा। तभी पंचायत व्यवस्था में महिलाओं के आरक्षण संबंधी हमारी व्यवस्था को गति मिलेगी, हमें पंचायत व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका की सराहना करनी होगी, ताकि वह अपने कर्त्तव्य एवं उद्देश्यों के प्रति अधिक बलवान एवं बेहतर रुप में कार्य कर सकें।

निष्कर्ष

भारत जैसे विकासशील देश के लिए पंचायत राज व्यवस्था में महिला आरक्षण का प्रावधान एक संजीवनी है, जो कि भारतीय समाज को जीवन प्रदान करती आ रही है, क्योंकि पंचायत में महिलाओं के आरक्षण में देश विकास एवं प्रगति की ओर निरंतर अग्रसर है। परन्तु इसके लिए हमें केवल सरकार एवं अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं की ओर ही मुँह ताकना नही है, अपितु जनसाधारण एवं प्रत्येक भारतीय का इसमें सक्रिय योगदान जरुरी है।

दिल्ली में रक्तदान सेवायेंः तथ्य एवं भ्रांतियाँ

डा.कुमुद बाला*

रक्तदान सेवायें किसी भी स्वास्थ्य सेवा का महत्वपूर्ण भाग है। यह एक जीवनदायी प्रक्रिया है। समय पर रक्त न मिलने से किसी भी व्यक्ति की जान को खतरा हो सकता है। अतः यह अति आवश्यक है कि रक्त प्रत्येक जरुरत मंद व्यक्ति को समय पर उपलब्ध हो, जिससे उसकी जान बचाई जा सके। दिल्ली की रक्तदान सेवायें विभाजित हैं, यह विभिन्न सरकारी विभागों के संयोजन से बनी हैं। इसमें केन्द्रीय सरकार, दिल्ली सरकार, दिल्ली नगर निगम, नई दिल्ली नगरपालिका, दिल्ली कैंट सम्मिलित हैं। दिल्ली की रक्तदान सेवायें अस्पताल आधारित हैं। अस्पताल में बना रक्त कोष अपनी भूमिका केवल अपने अस्पताल तक ही सीमित रखता है।

दिल्ली में कुल मिलाकर सरकारी एवं निजी अस्पतालों में लगभग 40 हजार बिस्तर हैं और विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा निर्देशों एवं मानकों के अनुसार दिल्ली के लिये प्रत्येक वर्ष लगभग चार लाख रक्त यूनिटों की आवश्यकता होती है, हालाँकि सभी स्रोतों से चार लाख यूनिट रक्त एकत्रित होता है लेकिन इसमें अधिकांश हिस्सा प्रतिस्थापित दान का होता है, स्वैच्छिक रक्तदान केवल 40% है जबकि कुल मिलाकर भारत वर्ष में यह लगभग 55% है हमारे देश के कुछ राज्यों में स्वैच्छिक रक्तदाताओं की संख्या अधिक है, जैसे पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि, जहां यह संख्या 90% से अधिक है । दिल्ली देश की राजधानी होने के साथ ही चिकित्सा सुविधाओं की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के बराबर है अतः देश विदेश से लोग अपना इलाज कराने दिल्ली आते हैं। जिससे दिल्ली की रक्त आवश्यकता बढ़ जाती है, जिस कारण से दिल्ली का स्वैच्छिक रक्तदान का प्रतिशत दूसरे राज्यों के मुकाबले कम है ।

सन् 1995 से पहले दिल्ली में निजी अस्पतालों एवं नर्सिग होम के मरीजों के लिये रक्त की पूर्ति केवल रेड क्रास के रक्तकोष के जरिये होती थी। लोगों को लम्बी दूरी तय करके रक्त लाना पड़ता था, जिसमें अधिक समय लगता था, कारणवश कुछ बीमार व्यक्ति समय पर रक्त न मिलने से मृत्यु को प्राप्त हो जाते थें। इस परेशानी को दूर करने के लिये दिल्ली सरकार ने रक्तदान सेवाओं का क्षेत्रीयकरण किया और दिल्ली के हर क्षेत्र में एक क्षेत्रीय रक्तदान केन्द्र खोला, जहां से निजी अस्पताल तथा नर्सिग होम के मरीज भी स्वस्थ एवं स्वच्छ रक्त ले सकते हैं। इससे कम दूरी पर रक्त उपलब्ध हो गया जिससे गंभीर रुप से घायल व्यक्ति को समय पर रक्त देकर उसकी जान बचाई जा सकें ।

इसी प्रक्रिया में आज दिल्ली के हर क्षेत्र मे 200 क्षेत्रीय रक्त हस्तातंरण केन्द्र हैं । ये इस प्रकार से हैं -

पूर्वी क्षेत्र - गुरु तेग बहादुर अस्पताल, शाहदरा
पश्चिमी क्षेत्र - दीन दयाल उपाध्याय अस्पताल, हरीनगर
उत्तरी क्षेत्र - हिन्दू राव अस्पताल, कमला नगर

* छात्रा, एम.डी. (सामुदायिक स्वास्थ्य प्रशासन), अंतिम वर्ष, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-67

दक्षिणी क्षेत्र - अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, अन्सारी नगर
मध्य क्षेत्र - लोकनायक अस्पताल, नई दिल्ली - रेड क्रास रक्त कोष, नई दिल्ली
दिल्ली कैंट - आर्मी रक्त कोष
बाहरी दिल्ली - रोटरी रक्त कोष, तुगलकाबाद
बाहरी पश्चिमी दिल्ली- लायन ब्लड बैंक, शालीमार बाग

इनके अतिरिक्त दिल्ली सरकार ने कुछ लाइसेंस शुदा रक्तकोषों को भी शिविर लगाने की स्वीकृति दी। ये सभी रक्तकोष एवं सरकारी रक्तकोष जगह जगह रक्त शिविर लगा सकते हैं और रक्त एकत्रित कर सकते हैं तथा निजी अस्पतालों में रक्त की पूर्ति कर सकते हैं।

भारत के संविधान में रक्त को एक दवा की संज्ञा दी गई है क्योंकि यह मनुष्य की धमनियों में सीधा चढ़ाया जाता है। इससे विभिन्न प्रकार के अवगुण हो सकते हैं तथा रक्त के फायदों के साथ- साथ इससे नुकसान भी हो सकता है। अतः संविधान के ड्रग एण्ड कॉस्मेटिक अधिनियम 1940 भाग XII, रक्तकोष नियम के अन्तर्गत रक्तदान सेवाओं का विनियमन किया गया है। दिल्ली में आज औषधि नियंत्रण विभाग द्वारा लाइसेंस रक्त कोषों की संख्या-56 है, इसके सरकारी, गैर सरकारी, निजी अस्पताल एवं स्वयं सेवी सस्थानों द्वारा संचालित रक्तकोष हैं।

भारत सरकार की नई रक्त नीति का लक्ष्य धीरे-धीरे 100% स्वैच्छिक रक्तदाताओं से रक्त एकत्रित करने का है तथा प्रत्येक रक्त यूनिट से रक्त घटक बनाने की योजना है, जिससे एक रक्त यूनिट से कई रोगियों को फायदा हो सकें। रक्त में विभिन्न घटक जैसे लाल कोशिका, प्लाज्मा एवं प्लेटलेट्स होते हैं इन सभी भागों को अलग किया जा सकता है तथा अलग-अलग बीमारियों से ग्रसित मरीजों को दिया जा सकता है,जिससे एक से अधिक मरीजों की जान बचाई जा सकती है।

शरीर में रक्त का बहुत महत्व है, रक्त की कमी से रोगी की जान जा सकती है। रक्त की आवश्यकता विभिन्न प्रकार की बीमारियों में होती है। जैसे रक्त की कमी से हीमोग्लोबिन कम हो जाता है तथा शरीर पीला पड़ जाता है, कुछ काम करने का मन नहीं करता और व्यक्ति थका-थका सा महसूस करता हैं। स्त्रियों में प्रसव के दौरान अधिक रक्तस्राव होने पर रक्त की आवश्यकता पड़ती हैं। बड़े शहरों में अत्यधिक परिवहन होने से आए दिन दुर्घटनायें होती रहती हैं, जिसमें गंभीर रुप से घायल व्यक्ति को रक्त की आवश्यकता होती हैं। शल्य चिकित्सा में रक्त की आवश्यकता होती हैं, रक्त की महत्ता युद्व के दौरान बहुत अधिक होती है। गंभीर रुप से घायल सैनिकों की जान बचाने के लिये रक्त की आवश्यकता होती है। आतंकवादी हमले के दौरान गंभीर रुप से घायल व्यक्ति को रक्त की आवश्यकता पड़ती है। पिछले वर्ष मुम्बई आतंकवादी घटना में रक्त की आवश्यकता अधिक हो गई थी। बच्चों की बीमारी थैलसीमिया में बच्चे की जान बचाने के लिये हर महीने रक्त की आवश्यकता पड़ती है। इन सभी को बचाने के लिये हमें स्वैच्छिक रक्त दान बढ़ाने की आवश्यकता है।

तथ्य एवं भ्रांतियां -

हमारे देश में रक्तदान को लेकर तरह-तरह की भ्रांतियां प्रचलित हैं जैसे रक्तदान करने से कमजोरी होती है अथवा एचआईवी/एड्स हो सकता है, नंपसुक हो सकते है- आदि। रक्तदान एक सुरक्षित प्रक्रिया है इसमें 8-10 मिनट लगते हैं, सभी आवश्यक उपकरण शुद्ध होते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संक्रमण होने का डर नही हैं। एक समय में केवल 350 मि.ली. रक्त लिया जाता हैं, जोकि हमारे शरीर के कुल रक्त का केवल 8% हिस्सा होता हैं। इसमें कोई कमजोरी नही होती। इस रक्त की पूर्ति 24 घंटों में हो जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति तीन महीने में एक बार रक्तदान कर सकता है। रक्तदान ऐसा कोई भी स्वस्थ व्यक्ति कर सकता है, जिसकी आयु 18 वर्ष एवं 60 वर्ष के बीच हो, पूर्ण रुप से स्वस्थ हो तथा हीमोग्लोबिन 12.5 ग्राम से अधिक हो। ध्यान रहे कि वह पिछले तीन महीनों में लम्बे बुखार, पीलिया से ग्रसित न हो या किसी भी प्रकार का इलाज न ले रहा हो। रक्तदान किसी भी लाइसैंस प्राप्त रक्तकोष या रक्त शिविर में कर सकते हैं।

रक्तदान के फायदे

रक्तदान करने से हमारे शरीर की रक्त बनाने की प्रक्रिया सुचारु रुप से काम करती रहती है। वैज्ञानिक रुप से सिद्ध हो चुका है कि जो नियमित रक्तदान करते हैं उन्हें दिल की बीमारियां कम होती हैं। अतः हमें नियमित रुप से रक्तदान करना चाहिये। यदि हमारे देश की 10% जनता भी वर्ष में एक बार रक्तदान करे तो हमारा देश रक्त एवं इसके पदार्थो का निर्यात कर सकता है तथा हमारा स्वैच्छिक रक्तदान 100% हो सकता है।

पेशेवर रक्तदान ऐसे लोग होते हैं जो अपना जीवन यापन करने के लिये अपने रक्त को बेचते है। ये समाज के निम्न वर्गीय अशिक्षित लोग होते हैं- जैसे गरीब मजदूर, रिक्शा चालक, इत्यादि। ये नशीली दवाओं का सेवन करते हैं, बार-बार नशा करने से इनका रक्त दूषित हो जाता है। जिससे कुछ प्रकार के विषाणु जैसे एड्स, हिपेटाईटिस इत्यादि इन व्यक्तियों के रक्त में पाये जाते हैं। यदि यह दूषित रक्त किसी व्यक्ति को दे दिया जाये तो उसे भी यह बीमारी लग सकती है। तथाकथित सभ्रांत लोग जो स्वयं रक्त नहीं देना चाहते, ऐसे लोगों का शोषण करते हैं। हमें ऐसे पेशेवर लोगों का रक्त नहीं लेना चाहिये। इन सभी कारणों को ध्यान में रखते हुये भारत के उच्चतम् न्यायालय ने जनवरी 1996 से पेशेवर रक्तदाताओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। अगर कोई रक्तकोष पेशेवर रक्तदाताओं से रक्त लेता है तो उस पर कानूनी कार्यवाही संभव हैं हमें इसे रोकना चाहिये तथा स्वैच्छिक रक्तदान को बढ़ावा देना चाहिये ।

इस प्रकार अब केवल स्वैच्छिक रक्तदाता या परिवार के सदस्य ही रक्तदान कर सकते हैं। हमें चाहिए कि हम वर्ष में एक बार अवश्य रक्तदान करें, जिससे देश में रक्त की कमी की पूर्ति की जा सके। आओ चलें रक्तदान करें - एवं अनमोल जीवन की रक्षा करें।

संदर्भः

1. रक्ताधान सेवाओं पर राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन के दिशा-निर्देश,2006
2. राष्ट्रीय रक्तदान नीति,2004
3. रक्ताधान सेवाओं पर एस.बी.टी.सी, दिल्ली के दिशा-निर्देश,2000
4. व्यावसायिक रक्तदाताओं के बारे में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश - 1996

'आशा' की मुस्कान

अरविन्द कुमार*

आस्था, निष्ठा, समर्पण और
मन में एक दृढ़ संकल्प लिए
घर से निकली है 'आशा'
होठों पर चिर-परिचित मुस्कान लिए।
अपने कांधे पर मातृ, शिशु स्वास्थ्य,
प्रजनन स्वास्थ्य एवं
राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन सरीखे,
स्वास्थ्य कार्यक्रमों को साकार करने का
गहन दायित्व लिए।
घर से निकली है 'आशा'
होठों पर इक मुस्कान लिए।
प्रयास मां-शिशु को स्वस्थ बनाने का
एक संकल्प जन-जन को
कुपोषण से बचाने का,
स्वास्थ्य के प्रति चेतना घर-घर
जगाने की प्रतिबद्धता लिए
घर से निकली है आशा
मन मे दृढ़ विश्वास लिए।
गांव-गांव, गली-गली की महिलाओं में
स्वास्थ्य-शिक्षा का नव-संचार करने,
स्वास्थ्य प्राप्ति की अलख जगाने
घर से निकली है आशा.....
आशा कभी अल्हड बन खेल-खेल में
किशोर-युवतियों को स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं
स्वस्थ जीवन के गूढ़ रहस्य बताती है,
माता-शिशु को स्वास्थ्य के लिए पोषण,
स्तनपान एवं समय पर प्रतिरक्षण
कराने का महत्व समझाती है।
कभी नवविवाहिताओं व सम उम्र महिलाओं

* हिन्दी अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

को प्रजनन-स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन
के उपाय बतलाती है,
मानो कठिन-जटिल कुछ नहीं
स्वास्थ्य प्राप्ति के पथ पर
सब सरल-सुगम बनाती है।
घर से निकली है 'आशा'
होठों पर मुस्कान लिए।

बेटी

रेखा मीणा*

समय बदला, हालात बदले, पर बदले नही हमारे उसूल,
चुभती है आज भी बेटी, ह्रदय में बनके शूल।
विज्ञान का वरदान भी, उसके लिए अभिशाप है,
कोख में बेटी पालना, जैसे कोई पाप है।

पैदा होने से पहले कितनी ही, मौत की भेंट चढ़ जाती हैं,
पैदा होने के बाद कितनी ही तिरस्कार विरासत में पाती हैं।
खिलता बचपन, अच्छी शिक्षा न भरपूर पोषण मिलता है,
बचपन का जीवन ही शोषण की भट्टी में जलता है।

कब बीता बचपन उसका, न जाने कब वो जवान हुई,
कब सुबह हुई जीवन की उसकी, और न जाने कब शाम हुई।
लड़की चाहे ना चाहे पर, शादी तो मजबूरी है,
योग्य हो अयोग्य हो पर, लड़के को दहेज जरूरी है!

कभी बेटी कभी बीवी बनकर, अपना धर्म निभाना है,
समाज के कोल्हू में बैल सम, स्वयं को पिलाना है।
अपनों से मिलते तिरस्कार को आखिर कब तक सहना होगा,
झूठे आदर्शो और उसूलों की भेंट आखिर कब तक चढ़ना होगा।

तोड़ना इन बंदिशो को क्यूँ इतना आसान नही,
ह्रदय की इस पीड़ा का क्यूँ सबको अहसास नही।
जरा देखो इसे खड़ी आँगन में, क्या तुमसे कहना चाहे है,
एक पंख इसे भी दे दो, शायद ये भी उड़ना चाहे है।

मत रोंदों इसके अरमान सपनों में रंग इसे भरने दो,
अंश तुम्हारा ही है जो, फिर क्यूँ न इसे भी जीने दो।
बेटी माँ है, बेटी बहन है बेटी जीवनस्रोत है,
बेटी दुर्गा, बेटी मरियम, बेटी जीवन जोत है।

* सहायक अनुसंधान अधिकारी, प्रजनन एवं जैव चिकित्सा विभाग, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

एड्स भगाओ

डा. चंचल सिंह मर्छाल*

नववर्ष का स्वर्णिम प्रभात
परन्तु अंतर्मन में एक द्वंद
असमय संध्या का एहसास
जीवन का उत्कर्ष काल
फिर भी उत्तेजना का ह्रास

माना कि नवयुग की चेतना आई है
विज्ञान ने क्रांति पाई है
विधाओं में कला छाई है
फिर भी लाचार, असहज !
वर्तमान से क्या शिक्षा पाई है

माना कि मेरा अतीत सुसुप्त था
असीम उर्ज़ा से यौवन तप्त था
कतिपय भविष्य दृष्टा मैं होता
खुद पर चिन्ताओं के बीज़ न बोता

आज अपनी किलकारियों को देखता हूं
स्वतंत्र विचरण मैं पाता हूं
कोई फिक्र ही नहीं
चिन्ता भी नहीं ।

'एड्स' क्या है ?
कैसे इससे सरोकार हैं ?
जिसका कोई सगा नहीं !
उसको कैसे हमसे प्यार है

मुझे तो एहसास ही नहीं
चूक कब और कहां हुई
ऐसा कोई ऐब भी तो नहीं
जिससे कभी मुलाकात हुई

अब मैं यह कैसे समझाऊं
मैं वैसा नहीं, जैसा सोच रहे हैं लोग

* छात्र, जन-स्वास्थ्य प्रबन्धन (डिप्लोमा), राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067।

वैसा भी नहीं;
जो हीन दृष्टि से मुझे देखा जाए

घबराओ नहीं .....
तुम भी हार सकते हो
ये किसी का सगा नहीं
तुम भी लपेटे में आ सकते हो

कोई सुनहरा उपहार समझ,
स्वीकार न करना
भूल से दुश्मन को भी
परोस न देना

सोचो, समझो - भाग न जाओ
गलती से भी पास न आओ
बस मुस्कुराओ - मुस्कुराओ
संयम से जीवन खुशहाल बनाओ

'एड्स' ... समझें और समझायें

डा. अशोक मिश्रा*

'एड्स' से न डरें, न डरायें,
आओ, इसको समझें और समझायें।
'एड्स' मिटा सकतें हैं जग से,
यदि हम, ज्ञान का दीप' जलायें।

'एड्स' है एक जान लेवा वायरस बीमारी,
तन से हर लेती 'रोग-प्रतिरोधक क्षमता' सारी।
इसके फैलने के मुख्य तरीके चार,
आइये, इन पर करें विचार -

'असुरक्षित-यौन-संबंध,
संक्रमित रक्त का प्रयोग।
संक्रमित माँ से शिशु को,
या संक्रमित नीड्ल्स-सिरिंज का उपयोग।

इनसे बचकर, इनको तजकर,
'एड्स' से हम पा सकते हैं मुक्ति।
'एड्स' की जानकारी ही है इसका 'टीका'
काउंसिलिंग भी है, एक प्रभावकारी युक्ति।

असुरक्षित यौन सम्बन्धों से बचना होगा,
विचलित मन को आत्मबल से कसना होगा।
एक ही वफादार-साथी से रखें यौन-सम्बन्ध,
अथवा 'कण्डोम' का सदैव रखें प्रबन्ध।

संक्रमित-रक्त और नीडल्स सीरिंज का नहीं करें प्रयोग,
संक्रमित माँ को समझायें, योग्य चिकित्सक के पास ले जायें।
'एड्स' का नाम सुनकर नहीं घबरायें,
आओ, इसको जाने, समझें और समझायें।

'एड्स' मिटा सकते हैं, हम जग से,
यदि सब मिलकर 'ज्ञान का दीप' जलायें।

* प्रोफेसर, पी.एस.एम.विभाग, जी.आर. मेडीकल कॉलेज, ग्वालियर।

हृदय की अनकही पीड़ा

डा. श्रीधर द्विवेदी*

साठ की छिमिया के सीने में भयानक दर्द,
सालो से ब्लड प्रेशर, तोंद और डायबिटीज़,
आदमी को गुजरे ज़माना हो गया,
उनके जाने के बाद अब बचा क्या है?
तीन बच्चे, दो विदेश में,
बड़ा अपने पास,
सिगरेट, शराब, गुटखे के सेवन से,
सेहत का सर्वथा सत्यानाश।

क्लेश, तूफ़ान, उफान, बहू पर अत्याचार,
कच्ची उम्र में हृदयाघात,
दिल की तीनों नलियाँ अवरुद्ध,
अवसाद, घात-प्रतिघात।
छल्ले पड़े हैं, फिर भी बेतहाशा पीता,
क्रोध के हलाहल में डूबता-उतराता,
सबकी पगड़ी उछालता,
बेसुध, बेफिक्र लुढ़का पड़ा रहता।

वैधव्य की पीड़ा उतना व्यथित नहीं करती,
जितना अपनों की बदनियती,
बेहयायी, बेवफाई और बदकिस्मती,
आँखों के सामने चमन उजड़ने की बेकसी।
आफत साँसत से उबा,
आह, प्रदाह, एथिरोस्कोलरोसिम से आहत,
सीने में धधक रहा ज्वालामुखी,
दिल का नासूर, अचानक दौरा बन उभर आया।

मेरी उखड़ती हर श्वास उच्छवास,
हृदय शूल के मूल में छिपी, मौन कहतीं,
क्रोध-क्लेश, खानदान, खानपान,
धूम्रपान के अर्न्तद्वंद की दास्तान,
मुझ अबला की आपबीती,
जर्जर हृदय की अनकही पीड़ा,
कोई तो दे कान !

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, औषधि/हृदय-रोग निवारक विभाग, यू.सी.एम.एस. एवं जी.टी.बी. अस्पताल, दिल्ली-110095।